[2010] 2 एस. सी. आर 979

पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य

बनाम

लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए समिति, पश्चिम बंगाल और अन्य

(2001 की दीवानी अपील संख्या 6249-6250)

फरवरी 17,2010

[के. जी. बालाकृष्णन, सीजेआई भारत के मुख्य न्यायाधीश, आर. वी. रवींद्रन, डी. के. जैन, पी. सतशिवम और जे. एम. पांचाल, न्यायमूर्तिगण]

भारत का संविधान, 1950:

अनुच्छेद 32 और 226 आर/डब्ल्यूअनुच्छेद 21 - मौलिक अधिकार-निष्पक्ष और निष्पक्ष जांच - न्यायिक समीक्षा-सर्वोच्च न्यायालय/उच्च न्यायालय द्वारा सी. बी. आई. को राज्य सरकार की सहमति के बिना राज्य के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में किए गए संज्ञेय अपराध की जांच करने का निर्देश-दिया गया: क्या यह न तो संविधान के संघीय ढांचे का उल्लंघन करेगा और न ही शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करेगा, और कानून में वैध होगा - राज्य का कर्तव्य है कि वह निष्पक्ष और निष्पक्ष ई जांच प्रदान करने वाले नागरिक के मानवाधिकारों को लागू करे - संवैधानिक अदालतें न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकती हैं और सी. बी. आई. को राज्य के अधिकार क्षेत्र के भीतर जांच करने का निर्देश दे सकती हैं- हालांकि, इस असाधारण शक्ति का प्रयोग संयम, सावधानी और असाधारण परिस्थितियों में तभी किया जाना चाहिए जब न्यायालय रिकॉर्ड/अभिलेख मौजूद पर सामग्री पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसी

सामग्री सी. बी. आई. या किसी अन्य समान एजेंसी द्वारा जांच का आह्वान करने वाले प्रथम दृष्टया मामले का खुलासा करती है। संविधान द्वारा संसद पर और किसी अधिनियम के तहत संसद द्वारा कार्यपालिका पर प्रतिबंध अनुच्छेद 32 और 226 के तहत न्यायपालिका की शक्ति पर प्रतिबंध नहीं है। धारा 6 संघ की शक्तियों पर विशेष पुलिस अधिनियम को संवैधानिक न्यायालयों की शक्तियों पर प्रतिबंध के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है-दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान/स्थापना अधिनियम, 1946, धाराये 3, 5 और 6-जाँच।

अनुच्छेद 13, 32, 142, 144 और 226-न्यायिक समीक्षा- की प्रकृति और कार्यक्षेत्र/दायरा संविधान स्पष्ट रूप से सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रदान करता है और क्रमशः अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उच्च न्यायालय-अनुच्छेद 32 के तहत उच्चतम न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को प्रदत्त संवैधानिक योजना और अधिकार क्षेत्र को देखते हुए, न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान का एक अभिन्न अंग और इसकी मूल संरचना का गठन करने वाली आवश्यक विशेषता होने के कारण, संसद का कोई भी अधिनियम मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के संबंध में संवैधानिक न्यायालयों की शक्तियों को बाहर या कम नहीं कर सकता है-संविधान की सर्वोच्चता के अलावा, विधानमंडल के बीच शक्तियों का पृथक्करण - कार्यपालिका और न्यायपालिका संविधान की मूल विशेषता है-फिर भी, न्यायिक समीक्षा पूरी तरह से एक अलग आधार पर खड़ी है-न्यायिक समीक्षा का समाधान करने के लिए आवश्यक है। संवैधानिक शक्ति की सीमाओं के बारे में विवाद और संविधान की अंतिम व्याख्याकार के रूप में संवैधानिक सीमाओं में प्रवेश करना-कानूनों की न्यायिक समीक्षा संविधान के अनुच्छेद 13 के आधार पर अंतर्निहित है जिसे संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के साथ पढ़ा जाता है-यह न केवल संसद और राज्य विधानसभाओं के बीच विधायी शक्तियों के वितरण को प्रभावी बनाने के लिए अंतिम मध्यस्थ के रूप में कार्य करता है, बल्कि प्रत्येक

इकाई द्वारा किसी भी उल्लंघन को दिखाना भी आवश्यक है-अनुच्छेद 32,142 और 144 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति के बीच महत्व और अंतर-व्याख्या-सिद्धांत शक्तियों का पृथक्करण-मूल संरचना संवैधानिकता का सिद्धांत है।

अनुच्छेद 245 और 246 आर/डब्ल्यु सातवीं अनुसूची, सूची III, प्रविष्टियाँ 2-ए ए 11 80-सूची II, प्रविष्टि 2, सूची बीमार और अनुच्छेद 32 और 226-संसद और राज्य विधानमंडलों की विधायी शक्तियाँ-जो न्यायिक समीक्षा माना गया व्यापक प्रस्ताव यह है कि संविधान के तहत संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का एक स्पष्ट सीमांकन है और उन्हें खुद को सौंपे गए क्षेत्र के भीतर सीमित करना होगा-हालांकि, अनुच्छेद 246 (1) में "खंड (2) और (3) में कुछ भी निहित होने के बावजूद" और अनुच्छेद 246 (3) में "खंड (1) और (2) के अधीन" शब्द संघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत को निर्धारित करते हैं अर्थात संघ और राज्य शक्तियों के बीच अपरिहार्य संघर्ष की स्थिति में, सूची I में उल्लिखित संघ की शक्ति राज्य की शक्ति पर प्रबल होगी। सूची II और III में गणना की गई है और सूची II और III के बीच अतिव्यापी होने की स्थिति में, बाद वाला प्रबल होगा-लेकिन, अनुच्छेद 246 में निर्धारित संघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का तब तक सहारा नहीं लिया जा सकता जब तक कि संघ और राज्य सूचियों में प्रविष्टियों के बीच एक अपरिवर्तनीय सीधा संघर्ष न हो-यदि किसी विधायी कार्रवाई द्वारा संघीय संरचना का उल्लंघन किया जाता है, तो संविधान यह सुनिश्चित करके संघीय संरचना की रक्षा करने का ध्यान रखता है कि न्यायालय संविधान के संरक्षक और दुभाषियों के रूप में कार्य करते हैं और अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उपचार प्रदान करते हैं, जब भी उल्लंघन का प्रयास किया जाता है-शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत।

तत्काल अपीलों और रिट याचिकाओं में, संविधान पीठ के विचार के लिए संदर्भित प्रश्न थाःक्या उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 के तहत स्थापित केंद्रीय जांच ब्यूरो को एक संज्ञेय अपराध की जांच करने का निर्देश दे सकता है, जो राज्य सरकार की सहमति के बिना किसी राज्य के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर हुआ था।

इस सवाल का जवाब देते हुए अदालत ने

माना कि1.1.संविधान का अनुच्छेद 21 अपने व्यापक परिप्रेक्ष्य में कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा व्यक्तियों के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहता है। उक्त अनुच्छेद अपने व्यापक अनुप्रयोग में न केवल अभियुक्त के अधिकारों के प्रवर्तन को बल्कि पीड़ित के अधिकारों को भी अपने दायरे में लेता है। राज्य का कर्तव्य है कि वह किसी नागरिक के मानवाधिकारों को लागू करे जो किसी संज्ञेय अपराध के आरोपी किसी भी व्यक्ति के खिलाफ निष्पक्ष और निष्पक्ष जांच का प्रावधान करता है, जिसमें उसके अपने अधिकारी शामिल हो सकते हैं। कुछ स्थितियों में अपराध का गवाह भी उसकी तलाश कर सकता है। राज्य द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाएगा। [कंडिका 44(ii)] [1025-जी.एचः 1026-ए.बी.]

खरक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **(1964) 1 एस. सी. आर. 332;** केहर सिंह और एक अन्य बनाम भारत संघ और एक अन्य **1988 (3) पूरक एस.सी.आर. 1102 = (1989) 1 एस.सी.सी. 204;** एम. नागराज और अन्य बनाम भारत और अन्य **2006 (7) पूरक एस. सी. आर. 336 = (2006) 8 एस. सी. सी. 212;** मिनरवा मिल्स लिमिटेड और अन्य बनामभारत संघ और अन्य **1981 (1) एस. सी. आर. 206 = (1980) 3 एस. सी. सी. 625;** मेनका गांधी बनाम भारत संघ **(1978) 1 एस. सी. सी. 248, संदर्भित।**

ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य **ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 27 को खारिज कर दिया गया।**

1.2. सूची I की प्रविष्टियाँ 2-ए और 80 और सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 2 के खाली पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि इन प्रविष्टियों के आधार पर, एक राज्य के नियमित पुलिस बल को राज्य के बाहर किसी भी क्षेत्र में शक्ति और अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए संघ की विधायी शक्ति का प्रयोग केवल उस विशेष राज्य की सरकार की सहमति से किया जा सकता है जिसमें ऐसा क्षेत्र स्थित है, सिवाय किसी भी राज्य से संबंधित पुलिस बल के जो उस राज्य के बाहर रेलवे क्षेत्रों में शक्ति और अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए है। [पैरा 18] [1005-एफ]

1.3. दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946, जो पूरे भारत तक फैला हुआ है, और जिसके तहत दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान, अर्थात् "सी. बी. आई". का गठन किया गया है, को केंद्र शासित प्रदेशों में कुछ अपराधों की जांच के लिए दिल्ली में एक विशेष बल का गठन करने और उक्त बल के अधीक्षण और प्रशासन के लिए प्रावधान करने और धारा 3 के तहत अधिसूचित अपराधों की जांच के संबंध में उक्त बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र के अन्य क्षेत्रों में विस्तार के लिए अधिनियमित किया गया था। प्रतिष्ठान का "अधीक्षण" केंद्र सरकार में निहित है। हालांकि धारा 5(1) अधिनियम केंद्र सरकार को किसी भी राज्य के किसी भी क्षेत्र में दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने का अधिकार देता है। धारा 6 केवल संबंधित राज्य सरकार की सहमति से उक्त प्रतिष्ठान के अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने की केंद्र सरकार की शक्ति पर प्रतिबंध लगाता है। [पैरा 19 और 22] [1005-जी.एच; 1006-ए.एफ; 1007-जी.एच.]

विनीत नारायण और अन्य बनाम भारत संघ और एक अन्य 1997 (6) पूरक एस. सी. आर. 595 = (1998) 1 एस. सी. सी. 226, संदर्भित।

1.4. संविधान द्वारा संसद पर प्रतिबंधःऔर और संसद द्वारा अधिनियम के तहत कार्यपालिका पर प्रतिबंध, संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत न्यायपालिका की शक्ति पर प्रतिबंध नहीं है। [पैरा 44 (v)] [1027-सी]

1.5. यदि एक ओर सातवीं अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 2 और दूसरी ओर सूची I की प्रविष्टि 2-ए और प्रविष्टि 80 के संदर्भ में, किसी अन्य एजेंसी द्वारा जांच की अनुमति है, बशर्ते कि राज्य द्वारा सहमति प्रदान की जाए। असाधारण स्थिति में, न्यायालय को उसी शक्ति का प्रयोग करने से रोका जाएगा जिसका प्रयोग संघ क़ानून के प्रावधानों के संदर्भ में कर सकता था। संवैधानिक अदालतों द्वारा इस तरह की शक्ति का प्रयोग शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं करेगा। वास्तव में, यदि ऐसी स्थिति में न्यायालय राहत देने में विफल रहता है, तो यह अपने संवैधानिक कर्तव्य में विफल होना होगा। [पैरा 44 (vi)] [1027-डी.एफ]

1.6. जब विशेष पुलिस अधिनियम स्वयं यह प्रावधान करता है कि राज्य की सहमति के अधीन, सी. बी. आई. उस अपराध के संबंध में जांच कर सकती है जो अन्यथा राज्य पुलिस के अधिकार क्षेत्र में था, तो अदालत न्यायिक समीक्षा की अपनी संवैधानिक शक्ति का भी प्रयोग कर सकती है और सी. बी. आई. को राज्य के अधिकार क्षेत्र में जांच करने का निर्देश दे सकती है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति को एस द्वारा नहीं हटाया जा सकता है, कम नहीं किया जा सकता है या कम नहीं किया जा सकता है। धारा 6 विशेष पुलिस अधिनियम। न्यायालयों की शक्तियों पर प्रतिबंध के रूप में कार्य करने वाला कोई भी वैधानिक प्रावधान होने के बावजूद, एस द्वारा लगाया गया प्रतिबंध। धारा 6 संघ की शक्तियों पर विशेष पुलिस अधिनियम को संवैधानिक

न्यायालयों की शक्तियों पर प्रतिबंध के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। इसलिए, उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग, शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत या संघीय ढांचे का उल्लंघन नहीं होगा। [पैरा 44 (vii)] [1027-जी.एच. 1028-ए.बी.]

1.7. उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए सी. बी. आई. को उस राज्य की सहमति के बिना किसी राज्य के क्षेत्र के भीतर किए गए कथित संज्ञेय अपराध की जांच करने का निर्देश न तो संविधान के न्यायिक ढांचे का उल्लंघन करेगा और न ही शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करेगा और यह कानून में वैध होगा। नागरिकों की नागरिक स्वतंत्रताओं के रक्षक होने के नाते, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के पास न केवल शक्ति और अधिकार क्षेत्र है, बल्कि सामान्य रूप से भाग III द्वारा और विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व भी है। उत्साहपूर्वक और सतर्कता से। [पैरा 45] [1028-डी.ई]

1.8. जहां तक किसी मामले में जांच करने के लिए सी. बी. आई. को निर्देश जारी करने का सवाल है, हालांकि यह तय करने के लिए कोई कठोर दिशानिर्देश निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं, लेकिन बार-बार यह दोहराया गया है कि ऐसा आदेश नियमित रूप से या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना है क्योंकि किसी पक्ष ने स्थानीय पुलिस के खिलाफ कुछ आरोप लगाए हैं। सी. बी. आई. द्वारा जाँच का निर्देश देने वाला आदेश तभी पारित किया जाना चाहिए जब उच्च न्यायालय, अभिलेख पर सामग्री पर विचार करने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसी सामग्री सी. बी. आई. या किसी अन्य समान एजेंसी द्वारा जाँच की मांग करने वाले प्रथम दृष्टया मामले का खुलासा करती है। इस असाधारण शक्ति का प्रयोग संयम से, सावधानी से और अपवादात्मक परिस्थितियों में किया जाना चाहिए जहां जांच में विश्वसनीयता प्रदान

करना और विश्वास पैदा करना आवश्यक हो जाता है या जहां घटना के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव हो सकते हैं या जहां पूर्ण न्याय करने और मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए ऐसा आदेश आवश्यक हो सकता है। अन्यथा, सी. बी. आई. बड़ी संख्या में मामलों से भर जाएगी और सीमित संसाधनों के साथ, गंभीर मामलों की भी ठीक से जांच करना मुश्किल हो सकता है और इस प्रक्रिया में असंतोषजनक जांच के साथ अपनी विश्वसनीयता और उद्देश्य खो सकता है। [पैरा 46 और 47] [1028-एफएच; 1029-ए-सी]

सचिव, लघु सिंचाई और ग्रामीण अभियांत्रिकी सेवा, यू. पी. और अन्य बनामसहंगू राम आर्य और एक अन्य। **(2002) 5 एस. सी. सी. 521, संदर्भित।**

2.1. लिखित संविधान द्वारा शासित एक लोकतांत्रिक देश में, यह संविधान है जो सर्वोच्च और संप्रभु है। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों सहित राज्य के सभी अंग संविधान से अपना अधिकार, अधिकार क्षेत्र और शक्तियां प्राप्त करते हैं और इसके प्रति निष्ठा रखते हैं। [पैरा 25] [1008-जी]

राजा राम पाल बनाम माननीय अध्यक्ष, लोकसभा और अन्य **2007 (1) एस.सी.आर. 317 = (2007) 3 SCC 184, संदर्भित।**

2.2. संविधान एक जीवित और जैविक दस्तावेज है। यह स्थिर नहीं रह सकता है और इसे राष्ट्र के साथ आगे बढ़ना चाहिए। संवैधानिक प्रावधानों को व्यापक रूप से और उदारता से देखा जाना चाहिए। बदली हुई परिस्थितियाँ और समय और राजनीति की आवश्यकताएँ। भारत का संविधान स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रदान करता है। कानूनों की न्यायिक समीक्षा संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के साथ पठित अनुच्छेद बी 13 के आधार पर संविधान में अंतर्निहित है। [पैरा 29 और 32] [1012-एच; 013-ए-बी; 1015-डी]

2.3. संवैधानिक योजना और अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को प्रदत्त अधिकार क्षेत्र को देखते हुए, न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान का एक अभिन्न अंग और इसकी मूल संरचना का गठन करने वाली संवैधानिक विशेषता है, संसद का कोई भी अधिनियम मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के संबंध में संवैधानिक न्यायालयों की शक्तियों को बाहर नहीं कर सकता है या कम नहीं कर सकता है। वास्तव में, ऐसी शक्ति भाग III और संविधान के अन्य भागों में सन्निहित संविधान के उद्देश्यों को व्यावहारिक सामग्री देने के लिए आवश्यक है। इसके अलावा, एक संघीय संविधान में, संसद और राज्य विधानमंडल के बीच विधायी शक्तियों के वितरण में सीमा शामिल होती है। विधायी शक्तियों पर और इसलिए, इसके लिए संसद के अलावा किसी अन्य प्राधिकरण की आवश्यकता होती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या ऐसी सीमाओं का उल्लंघन किया गया है। न्यायिक समीक्षा न केवल एफ संसद और राज्य विधानमंडलों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण को प्रभावी बनाने के लिए अंतिम मध्यस्थ के रूप में कार्य करती है, बल्कि प्रत्येक इकाई द्वारा किसी भी उल्लंघन को दिखाना भी आवश्यक है। इसलिए, न्यायिक समीक्षा को "शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांतों, कानून के शासन, संवैधानिकता के सिद्धांत और न्यायिक समीक्षा की पहुंच" के संयोजन द्वारा उचित ठहराया जाता है। [पैरा 44 (iii)] [1026-सी-जी]

2.4. यह मामूली बात है कि भारत में अपनाई गई संवैधानिक योजना में, संविधान की सर्वोच्चता के अलावा, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण संविधान की बुनियादी विशेषताओं का गठन करता है। फिर भी, इस तथ्य के अलावा कि हमारा संविधान राज्य के उक्त तीन अंगों के बीच शक्तियों के कठोर और सख्त विभाजन की परिकल्पना नहीं करता है, न्यायिक समीक्षा की शक्ति पूरी तरह से एक अलग आधार पर खड़ी है। स्वयं संविधान की मूल संरचना का हिस्सा होने के कारण, इसे संवैधानिक संशोधन द्वारा भी हटाया या संक्षिप्त नहीं किया जा सकता है। अन्यथा भी,

संवैधानिक शक्ति की सीमाओं के बारे में विवादों को हल करने और संविधान के अंतिम व्याख्याकार के रूप में संवैधानिक सीमाओं में प्रवेश करने के लिए न्यायिक समीक्षा आवश्यक है। [पैरा 26] [1009-ई-एच; 1010-ए-बी]

1964 का विशेष संदर्भ संख्या 1 **[1965] एस. सी. आर. 413;** केशवानंद भारती श्रीपदगलवरु बनाम केरल राज्य और एक अन्य 1**973 पूरक एस. सी. आर. 1 = (1973) 4 एस. सी. सी. 225;** श्रीमती इंदिरा नेहरू गांधी बनाम श्री राज नारायण और एक अन्य। **1975 (पूरक) एस. सी. सी. 1.** एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य **1997 (2) एस. सी. आर. 1186 = (1997) 3 एस.सी.सी. 261;** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम जीत एस बिष्ट और एक अन्य **2007 (7) एससीआर 705 = (2007) 6 एससीसी 586; और** आई.आर. कोएल्हो (डी) एल. आर. बनाम तमिलनाडु राज्य **2007 (1) एस. सी. आर. 706 = (2007) 2 एस. सी. सी. 1, संदर्भित किया गया।**

लॉसन ए. डब्ल्यू. हंटर और अन्य बनाम साउथम इंक. **(1984) 2 S.C.R.145 (कैन एससी), संदर्भित।**

जूलियस स्टोनःकानून और न्याय के सामाजिक आयाम **(1966) पृष्ठ 668, संदर्भित किया गया।**

2.5. संविधान के अनुच्छेद 245 की भाषा से यह स्पष्ट है कि संसद या राज्य विधानमंडलों की सभी विधायी शक्तियों को स्पष्ट रूप से संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन बनाया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से संविधान के भाग III में सहनिर्धारित अधिकार शामिल होंगे। इस प्रकार प्रदत्त अधिकारों में से किसी का उल्लंघन है या नहीं, यह केवल संवैधानिक न्यायालयों द्वारा तय किया जाना है, जो न केवल किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करने के लिए सशक्त हैं, बल्कि इस उद्देश्य के लिए अनिवार्य, प्रमाणपत्र, बंदी प्रत्यक्षीकरण, निषेध और यथास्थिति वारंट के निर्देश या आदेश या रिट या "प्रकृति में"

जारी करके मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए भी सशक्त हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि संविधान का अनुच्छेद 32 संविधान के भाग II में भी निहित है, जो मौलिक अधिकारों की गणना करता है न कि संविधान के अन्य अनुच्छेदों के साथ जो सर्वोच्च न्यायालय के सामान्य अधिकार क्षेत्र को परिभाषित करते हैं। इस प्रकार, अनुच्छेद 32 के तहत उपचार अपने आप में एक मौलिक अधिकार होने के कारण, यह सुनिश्चित करना सर्वोच्च न्यायालय का कर्तव्य है कि किसी भी वैधानिक या संवैधानिक प्रावधान द्वारा किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन या संक्षिप्त नहीं किया गया है। [पैरा 32] [1015-डी-एच; 1016-। ए-सी]

2.6. इसके अलावा, यह अनुच्छेद 32 के खंड (2) में प्रयुक्त 'की प्रकृति में' अभिव्यक्ति से भी स्पष्ट है कि उक्त खंड द्वारा प्रदत्त अधिकार व्यापक अवधि में है और यह उक्त खंड में निर्दिष्ट उच्च विशेषाधिकार रिट जारी करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसके दायरे में कोई भी निर्देश या आदेश या रिट जारी करने की शक्ति शामिल है जो मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उपयुक्त हो सकती है। इसलिए, जब इनमें से किसी भी रिट को जारी करने की शर्तों को पूरा नहीं किया जाता है, तब भी सर्वोच्च न्यायालय उस नागरिक की मदद करने के लिए विवश नहीं होगा जो न्यायिक निवारण के लिए उसके सामने आया है। [पैरा 32] [1016-डी-ई]

बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ और अन्य **1984 (2) एस. सी. आर. 67 = (1984) 3 एस. सी. सी. 161;** नीलाबती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य। **1993 (2) एससीआर 581 = (1993) 2 एससीसी 746;** खत्री और अन्य (II) बनाम बिहार राज्य और अन्य **1981 (2) एस. सी. आर. 408 = (1981) 1 एस. सी. सी. 627; और** खत्री और अन्य (IV) बनाम बिहार राज्य और अन्य **1981 (3) एस. सी. आर. 145 = (1981) 2 एस. सी. सी. 493, संदर्भित किया गया।**

2.7. संविधान के भाग II में निहित मौलिक अधिकार अंतर्निहित हैं और किसी भी संवैधानिक या सांविधिक प्रावधान द्वारा समाप्त नहीं किए जा सकते हैं। कोई भी कानून जो ऐसे अधिकारों को निरस्त या कम करता है, वह मूल संरचना सिद्धांत का उल्लंघन होगा। यह निर्धारित करने में कि क्या यह मूल संरचना को नष्ट करता है या नहीं, भाग II के तहत गारंटीकृत अधिकारों पर कानून के वास्तविक प्रभाव और परिणाम को ध्यान में रखा जाना चाहिए। [पैरा 44 (i)] [1025-E-F]

2.8. इसके अलावा, जहां तक उच्चतम न्यायालय का संबंध है, अनुच्छेद 32 और 142 के अलावा, जो उसे ऐसे निर्देश जारी करने का अधिकार देता है, जो किसी भी कारण या मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं, संविधान का अनुच्छेद 144 भारत के क्षेत्र में सभी प्राधिकरणों, दीवानी या न्यायिक, को उसके द्वारा पारित आदेशों की सहायता के लिए कार्य करने का आदेश देता है। [पैरा 34] [1017-एफ]

2.9. जहाँ तक उच्च न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक समीक्षा की शक्ति का संबंध है, निस्संदेह वे एक तरह से व्यापक हैं। उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को मौलिक अधिकारों को लागू करने और "किसी अन्य उद्देश्य के लिए" निर्देश, आदेश या रिट जारी करने के लिए अधिकृत हैं। अनुच्छेद 32 और 226 के वाक्यांश विज्ञान में अंतर से यह स्पष्ट है कि इन दोनों अनुच्छेदों द्वारा प्रदत्त अधिकार की प्रकृति और उद्देश्य में स्पष्ट अंतर है। जबकि अनुच्छेद 32 द्वारा गारंटीकृत अधिकार का प्रयोग केवल संविधान के भाग II द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए किया जा सकता है, अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त अधिकार का प्रयोग न केवल मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए किया जा सकता है, बल्कि "किसी अन्य उद्देश्य के लिए" भी किया जा सकता है, अर्थात किसी क़ानून आदि द्वारा प्रदत्त किसी भी कानूनी अधिकार के प्रवर्तन के लिए। [पैरा 35] [1017-जी-एच; 1018-ए-एफ बी]

तिरुपति बालाजी डेवलपर्स (पी) लिमिटेड और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य **2004 (1) पूरक। एस. सी. आर. 494 = (2004) 5 एस. सी. सी. 1 और** द्वारकानाथ, हिंदू अविभाजित परिवार बनाम आयकर अधिकारी, विशेष सर्कल/अंचल, कानपुर और एक अन्य। **[1965] 3 एस. सी. आर. 536, संदर्भित किया गया।**

3.1. जहाँ तक संसद और राज्य विधानमंडलों की विधायी शक्तियों का संबंध है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 246 में कहा गया है कि संसद को खंड (2) और (3) में कुछ भी निहित होने के बावजूद सूची I में प्रगणित किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने की अनन्य शक्ति होगी। अनुच्छेद 246 (1) में अबाधित खंड संघ विधानमंडल की प्रधानता या सर्वोच्चता पर विचार करता है। यह शक्ति खंड (2) और (3) में निहित किसी भी चीज़ से जुड़ी नहीं है, क्योंकि ये खंड स्वयं स्पष्ट रूप से सीमित हैं और अनुच्छेद 246 (1) में अबाधित खंड के अधीन हैं। [पैरा 15] [1002-ई-एच; 1003-ए]

केशवानंद भारती श्रीपदगलवरु बनाम केरल राज्य और एक अन्य **1973 पूरक एस. सी. आर. 1 = (1973) 4 एस. सी. सी. 225;** श्रीमती इंदिरा नेहरू गांधी बनाम श्री राज नारायण और एक अन्य। **1975 (पूरक) एस. सी. सी. 1, संदर्भित किया गया।**

3.2. सूची-II में वर्णित किसी भी मामले के संबंध में विधान बनाने की राज्य विधानमंडल की अनन्य शक्ति का प्रयोग खंड (1) के अधीन किया जाना चाहिए, अर्थात सूची-1 में उल्लिखित मामलों के संबंध में विधान बनाने की संसद की अनन्य शक्ति। इसके परिणामस्वरूप, यदि सूची-I में प्रविष्टि और सूची-II में प्रविष्टि के बीच कोई टकराव है, जो सुलह करने में सक्षम नहीं है, तो किसी गणना किए गए मामले के संबंध में विधान बनाने की संसद की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। सूची I में उल्लिखित राज्य विधानमंडल की शक्ति के प्रयोग को स्वतः ही हटा देना चाहिए। [पैरा 15] [303-बी-डी]

3.3 सूची III में सूचीबद्घ किसी भी मामले के संबंध में संसद और राज् विधानमंडल दोनो के पास कानून की समवर्ती शकितयां है। अनुच्छेद 246(1) में शब्द खंडो के अधीन (1)और(2) अनुच्छेद 246(3) में संघीय सर्वोच्चता के सिद्घांत को निर्धारित किया गया है, अर्थात संघ और राज्य की शक्तियों के बीच अपरिहार्य संधर्ष की स्थिति में, सूची I में उल्लिखित संध की शक्ति राज्य की शक्ति पर प्रबल होगी जैसा कि सूची II और III में बताया गया है और एक मामले में सूची II और III के बीच अतिव्यापी होने पर, बाद वाली सूची मान्य होगी। [कंडिका 15][1003-डी-एफ]

3.4. हालाँकि, निस्संदेह, संविधान राज्य विधानमंडलों पर संसद की सर्वोच्चता को दर्शाता है, फिर भी अनुच्छेद 246 में संघीय सर्वोच्चता का सिद्धांत निर्धारित किया गया है। संविधान का सहारा तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि संघ और राज्य सूचियों में प्रविष्टियों के बीच एक अप्रतिरोध्य सीधा संघर्ष न हो। इस प्रकार, व्यापक प्रस्ताव यह है कि संविधान के तहत संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का स्पष्ट सीमांकन है और उन्हें खुद को सौंपे गए क्षेत्र के भीतर सीमित रखना होगा। यह भी ध्यान में रखा जा सकता है कि सूचियों का कार्य शक्तियों को प्रदान करना नहीं है, वे केवल विधायी क्षेत्र का सीमांकन करते हैं। [पैरा 15] [1003-ई-एच]

3.5. यदि किसी भी विधायी कार्रवाई द्वारा संघीय ढांचे का उल्लंघन किया जाता है, तो संविधान यह सुनिश्चित करके संघीय ढांचे की रक्षा करने का ध्यान रखता है कि अदालतें संविधान के संरक्षक और दुभाषियों के रूप में कार्य करती हैं और जब भी उल्लंघन का प्रयास किया जाता है, तो अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उपचार प्रदान करती हैं। इन परिस्थितियों में, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा संविधान को बनाए रखने और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए अनुच्छेद 32 या 226 के तहत शक्ति का

प्रयोग करने के किसी भी निर्देश को संघीय ढांचे का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है। [पैरा 44 (iv)] [1026-एच; 1027-ए-बी]

अग्रिम बीमा कंपनी लिमिटेड का प्रबंधन बनाम श्री गुरुदासमल और अन्य। **1970 (1) एस. सी. सी. 633;** काजी लेंडुप दोरजी बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य। **1994 पूरक (2) एस. सी. सी. 116;** सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन/सर्वोच्च न्यायालय अधिवक्ता संघ बनाम भारत संघ और एक अन्य **1998 (2) एस. सी. आर. 795 = (1998) 4 एस. सी. सी. 409;** राजस्थान राज्य और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य। **1978 (1) एससीआर 1 = (1977) 3 एससीसी 592;** एस. आर. बोम्मई और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य। **1994 (2) एससीआर 644 = (1994) 3 एससीसी 1;** कुलदीप नायर और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य। **2006 (5) पूरक। एससीआर 1 = (2006) 7 एससीसी 1; और** उर्वरक निगम कामगर संघ (विनियमित), सिंदरी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य। **1981 (2) एससीआर 52 = (1981) 1 एस.सी.सी. 568, संदर्भित किया गया।**

वाद मामला संदर्भ

1970 (I) एसएससी 633	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 4**
1994 पूरक (2) एसएससी 116	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 4**
1998 (2) एसएससी 795	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 8**
1978 (I) एसएससी 1	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 10**
1994 (2) एसएससी 644	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 10**
2006 (5) पूरक एसएससी 1	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 10**
2007 (1) एसएससी 706	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 11**

1995 (1) एसएससी 413	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 11**
1981 (1) एसएससी 206	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 11**
1981 (2) एसएससी 52	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 11**
1993 (2) एसएससी 581	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 11**
1977 (2) एसएससी 1186	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 11**
[1995]3 एसएससी 536	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 11**
1997 (6) पूरक एसएससी 595	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 13**
2007 (1) एसएससी 317	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 25**
1973 पूरक एसएससी 1	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 26**
2007 (7) एसएससी 705	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 27**
1988 (3) पूरक एसएससी 1102	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 29**
(1984)2 एसएससी 145 (कैन एससी)	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 29**
2006 (7) पूरक एसएससी 336	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 30**
1984 (2) एसएससी 67	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 32**
1981 (2) एसएससी 406	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 33**
1981 (3) एसएससी 145	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 33**
2004 (1) पूरक एसएससी 494	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 36**

(1964)1 एसएससी 332	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 38**
(1978)1 एसएससी 248	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 41**
ए.आई.आर. 1950 एस सी 27	**रद्द कर दिया गया**	**कंडिका 41**
(2002)5 एस सी सी 521	**संदर्भित किया गया**	**कंडिका 47**

दीवानी अपीलाचय क्षेत्राधिकारः 2001 की दीवानी अपील सं. 6249-6250

2001 की रिट याचिका संख्या 450 (डब्ल्यू) के साथ 2001 के दीवानी नियम संख्या-1601 (डब्ल्यू) में कलकत्ता उच्च न्यायालय के दिनांक 30.03.2001 के निर्णय और आदेश से।

के साथ

2008 के डब्लयू पी (आपराधिक) संख्या 24

2007 के विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 4096

2006 के डब्लयू पी (दीवानी) संख्या 573

जी. ई. वाहनवती, एस. जी., बी. दत्ता, ए. एस. जी., के. के. वेणुगोपाल, श्याम दीवान, उदय यू. ललित, पी.एस. नरसिम्हा, के. राधाकृष्णन, प्रवीण पारेख, तारा चंद्र शर्मा, नीलम शर्मा, अंकुर तलवार, किशन दत्त, एजाज मकबूल, विकास सिंह, तरुणा सिंह, वसीफ गिलानी, अमित एस. चौहान, के. राघवचार्युलु, श्रीधर पोटाराजू, जूलियस रियामी, रोशमानी, चौधरी शम्सुद्दीन खान, चिनमॉय पी. शर्मा, रजनी ओहरी लाल, बी. के. प्रसाद पी. परमेस्वरन, कल्याण कुमार बंदोपाध्याय, अनीप सचथे, मोहित पॉल, अरिजीत प्रसाद रंजन मुखर्जी, धीरज त्रिवेदी, मैत्रेयी त्रिवेदी दासगुप्ता, हीरेन दासन, धीरेंद्र कुमार मिश्रा, रोहित सोहागौरा, अमित

शर्मा, मो. शकील (सरला चंद्र के लिए), सुनील कुमार आर. सिंह, जतिंदर कुमार भाटिया, प्रशांत कुमार, त्रिवेणी पोटेकर, अमरजीत सिंह बेदी उपस्थित दलों के लिए।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया

डी. के. जैन, न्यायमूर्त्ति 1. संविधान पीठ की राय के लिए जिस मुद्दे को भेजा गया है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 (संक्षेप में "विशेष पुलिस अधिनियम") के तहत स्थापित केंद्रीय जांच ब्यूरो (संक्षेप में "सीबीआई") को एक संज्ञेय अपराध की जांच करने का निर्देश दे सकता है, जो कथित रूप से राज्य सरकार की सहमति के बिना किसी राज्य के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र में हुआ है।

2. पूर्व-वर्णित महत्वपूर्ण कानूनी मुद्दे के निर्धारण के लिए, दीवानी अपीलों/विशेष अपीलों के इस समूह में व्यक्तिगत मामलों में प्राप्त तथ्यों पर विस्तार करना अनावश्यक है। अनुमति याचिकाएँ/रिट याचिकाएँ और सिविल/दीवानी अपील संख्या- 6249 में तथ्यों का संक्षिप्त संदर्भ - 2001 का, 6250 8 नवंबर, 2006 के निर्देश आदेश में देखा गया, पर्याप्त होगा। ये हैंः

एक अब्दुल रहमान मंडल (जिसे इसके बाद "शिकायतकर्ता" के रूप में संदर्भित किया गया है) एक राजनीतिक दल के बड़ी संख्या में कार्यकर्ताओं के साथ पश्चिम बंगाल राज्य के मिदनापुर जिले के गरबेटा में उस पार्टी के कई शिविरों में रह रहा था। 4 जनवरी, 2001 को शिकायतकर्ता और कुछ अन्य लोगों ने ऐसे ही एक शिविर से अपने घरों को लौटने का फैसला किया। जब वे शिकायतकर्ता के घर पहुंचे, तो कुछ उपद्रवियों ने उन पर आग्नेयास्त्रों और अन्य विस्फोटकों से हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप कई लोग हताहत हुए। शिकायतकर्ता घटना स्थल से भागने में सफल रहा, खुद को छिपा लिया और नरसंहार को देखा। उन्होंने 4 जनवरी, 2001 को ही गरबेटा पुलिस स्टेशन में एक लिखित शिकायत दर्ज

कराई, लेकिन प्रथम सूचना रिपोर्ट/प्रतिवेदन ("एफ. आई. आर. संक्षेप में) भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में "आई. पी. सी".) की धारा 148/149/448 436/364/302 201 के तहत शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 25/27 और विस्फोटक अधिनियम, 1884 की धारा 9 (बी) के साथ पढ़ने वाले अपराधों के लिए केवल 5 जनवरी, 2001 को दर्ज किया गया था। 8 जनवरी, 2001 को पश्चिम बंगाल के पुलिस महानिदेशक ने सी. आई. डी. को मामले की जांच करने का निर्देश दिया। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत लोकतांत्रिक अधिकार संरक्षण समिति, पश्चिम बंगाल द्वारा कलकत्ता के उच्च क्षेत्राधिकार में जनहित में एक रिट याचिका दायर की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि हालांकि उक्त घटना में 4 जनवरी, 2001 को 11 लोगों की मौत हो गई थी और घटना को हुए तीन महीने से अधिक समय बीत चुका था, लेकिन दो व्यक्तियों को छोड़कर, प्राथमिकी में नामित किसी अन्य व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया गया था; पीड़ितों की पहचान करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया था और अब तक पुलिस इस निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाई थी कि लापता व्यक्ति जीवित थे या नहीं। यह आरोप लगाया गया था कि चूंकि राज्य में पुलिस प्रशासन सत्तारूढ़ दल के प्रभाव में था जो अपनी छवि बचाने के लिए घटना को छिपाने की कोशिश कर रहा था, इसलिए घटना की जांच एक स्वतंत्रत एजेंसी, सी. बी. आई. को सौंपी जा सकती है।

3. राज्य सरकार द्वारा विपक्ष में दायर हलफनामे पर विचार करने पर, उच्च न्यायालय ने महसूस किया कि मामले की पृष्ठभूमि में राजनीतिक नतीजों के कारण राज्य पुलिस द्वारा जांच में निष्पक्षता और निष्पक्षता के बारे में उसे कड़ी आपत्ति है, इसलिए, राज्य जांच एजेंसी द्वारा जांच जारी रखने में कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। इसके अलावा, भले ही राज्य पुलिस द्वारा जांच निष्पक्ष और सच्चाई से की गई हो, फिर भी इस आरोप के कारण इसे संदेह के साथ देखा जाएगा कि सभी हमलावर सत्तारूढ़ दल के सदस्य

थे। इन सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने उक्त घटना की जांच सी. बी. आई. को सौंपना उचित समझा।

4. उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश से व्यथित पश्चिम बंगाल राज्य ने इस न्यायालय के समक्ष अपील करने के लिए विशेष अनुमति के लिए एक याचिका दायर की। 3 सितंबर, 2001 को अनुमति दी गई। जब मामला 8 नवंबर, 2006 को दो-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए आया, तो पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए दलीलों और द मैनेजमेंट ऑफ एडवांस इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्री गुरुदासमल और बन्य और काजी लेडुप दोरजी इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का ध्यान में रखते हुए बनाम केन्द्रीय अन्वेशषण ब्यूरो और अन्य में पीठ की राय थी कि अपीलों में शामिल कानून का सवाल बहुत सार्वजनिक महत्व का था और न्यायालयों के समक्ष अक्सर आ रहा था और इसलिए, यह आवश्यक था कि इस मुद्दे को एक बड़ी पीठ द्वारा निपटाया जाए। तदनुसार, पीठ ने निर्देश दिया कि मामले के कागजात भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखे जाएं ताकि मामले को एक बड़ी पीठ के समक्ष रखने के लिए उचित आदेश पारित किए जा सकें। जब यह मामला 29 अगस्त, 2008 को भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली तीन न्यायाधीशों की पीठ, 1970 (1) एस. सी. सी. 633 1994 पूरक (2) एस. सी. सी. 116 के समक्ष आया, तो मामलों के इस समूह को संविधान पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करने का निर्देश दिया गया। इस तरह इन मामलों को हमारे सामने रखा गया है।

<u>प्रतिद्वंद्वी विवादः</u>

5. श्री के. के. वेणुगोपाल, पश्चिम बंगाल राज्य की ओर से पेश वरिष्ठ वकील ने भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 80 का उल्लेख करते हुए; उक्त अनुसूची की सूची II की प्रविष्टि 2 और विशेष पुलिस अधिनियम की धारा 5 और 6 का भी जोरदार तर्क दिया कि उक्त संवैधानिक और सांविधिक प्रावधानों से यह स्पष्ट है कि

एक राज्य की पुलिस को उस राज्य की सहमति के बिना दूसरे राज्य में किए गए अपराध की जांच करने की अनुमति देने वाले किसी भी कानून को लागू करने में संसद की विधायी शक्ति पर पूर्ण प्रतिबंध है। यह आग्रह किया गया कि भारत सरकार अधिनियम, 1935, सातवीं अनुसूची की सूची I (संघीय विधायी सूची) की प्रविष्टि 39 के तहत प्रदत्त शक्तियों का उपयोग करते हुए अधिनियमित विशेष पुलिस अधिनियम, जो अब संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 80 द्वारा अधिकार में लिया गया है, उस राज्य की सहमति के बिना दूसरे राज्य में किसी अपराध की जांच करने वाले एक राज्य की पुलिस के निषेध को दोहराता है। यह प्रस्तुत किया गया था कि सूची 2 की प्रविष्टि 2 जो पुलिस के संबंध में राज्य विधानमंडल को अनन्य अधिकार क्षेत्र प्रदान करती है, संबंधित राज्य की सहमति प्राप्त किए बिना राज्य विधानमंडल के अनन्य अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है।

6. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि राज्य के तीन अंगों, अर्थात् विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों के पृथक्करण के लिए इन अंगों में से प्रत्येक को संविधान द्वारा उसे सौंपे गए क्षेत्र के भीतर खुद को सीमित करने की आवश्यकता होगी और संविधान के अक्षर और भावना के उल्लंघन या विपरीत कार्य नहीं करना होगा।

7. इस प्रकार, विद्वान वकील के तर्क का जोर यह था कि दोनों, संघीय संरचना के साथ-साथ शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत, संविधान की मूल संरचना का एक हिस्सा होने के नाते, केंद्र सरकार के लिए न तो यह अनुमति है कि सातवीं अनुसूची की सूची II में निर्दिष्ट मामलों के संबंध में किसी राज्य की विधायी शक्तियों का अतिक्रमण करना और न ही देश के वरिष्ठ न्यायालय ऐसी अधिकारिता का निर्धारण कर सकते हैं जो अन्यथा संविधान के तहत निषिद्ध है। यह आग्रह किया गया कि यदि संसद को कोई ऐसा कानून

पारित करना है जो एक राज्य की पुलिस को उस राज्य की सहमति के बिना दूसरे राज्य में जांच करने के लिए अधिकृत करता है, तो ऐसा कानून पूरी तरह से अमान्य होगा और इसलिए, कानून के शासन के लिए उन अदालतों की आवश्यकता होगी, जो संविधान के अधीन हैं, यह सुनिश्चित करने के लिए कि संविधान में एक मूल सिद्धांत के रूप में सन्निहित संघीय संरचना, किसी राज्य के पुलिस बल को उस राज्य की सहमति के बिना दूसरे राज्य में किए गए अपराध की जांच करने की अनुमति/निर्देश देने से बाधित न हो।

8. सुप्रीम कोर्ट बार एसोसिएशन/सर्वोच्च न्यायालय अधिवक्ता संघ और एक अन्य बनाम भारत संघ में संविधान पीठ की टिप्पणियों पर बहुत अधिक भरोसा करते हुए विद्वान वकील ने तर्क दिया कि जब इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 142 का उपयोग कानून के स्पष्ट प्रावधानों के विपरीत कार्य करने के लिए नहीं किया जा सकता है, तो उच्च न्यायालय सांविधिक और संवैधानिक प्रावधानों की अनदेखी करते हुए कोई भी निर्देश जारी नहीं कर सकता है। विद्वान वकील ने इस हद तक तर्क दिया कि जब राज्य पुलिस बाहरी प्रभावों के कारण निष्पक्ष जांच करने की स्थिति में नहीं है, तब भी न्यायालय किसी अन्य राज्य के पुलिस बल को उस राज्य की सहमति के बिना जांच करने का निर्देश देने की कार्यकारी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में, स्थिति से निपटने के लिए एक उपयुक्त कानून बनाने का मामला संसद के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए। विद्वान वकील के अनुसार, जब तक (1998) 4 एस. सी. सी. 409 पूरा नहीं हो जाता, तब तक ऐसी चरम स्थिति भी न्यायालय द्वारा संविधान द्वारा बनाई गई संघीय या अर्ध-संघीय प्रणाली को परेशान करने को उचित नहीं ठहराएगी।

9. जहाँ तक संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय द्वारा अधिकारिता के प्रयोग का संबंध है, विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि इस तथ्य के अलावा कि संविधान के अनुच्छेद 226 (1) के तहत क्षेत्रीय सीमाओं के कारण संविधान के अनुच्छेद

142 के तहत इस न्यायालय की शक्ति और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की अधिकारिता के बीच महत्वपूर्ण अंतर है, एक उच्च न्यायालय उन क्षेत्रों के बाहर स्थित अधिकारियों को कोई भी निर्देश जारी करने से वंचित है जिन पर उसका अधिकार क्षेत्र है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार अनुच्छेद 226 के खंड (2) का वर्तमान मामले जैसे किसी मामले में कोई आवेदन नहीं होगा, क्योंकि रिट याचिका दायर करते समय कार्रवाई का कारण पूरा हो गया था और खंड (2) के तहत शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब कार्रवाई के कारण के बीच कोई संबंध हो जो पूरी तरह से या आंशिक रूप से राज्य के भीतर उत्पन्न होता है और प्राधिकरण जो राज्य के बाहर स्थित है। यह दावा किया गया था कि पश्चिम बंगाल राज्य के भीतर हुई घटना, जिसकी जांच पश्चिम बंगाल में अधिकार क्षेत्र की स्थानीय पुलिस द्वारा की जा रही थी, से असंबद्ध होने के कारण सी. बी. आई. को मामले की जांच करने का कोई अधिकार नहीं था।

10. भारत संघ की ओर से पेश हुए भारत के विद्वान सॉलिसिटर जनरल/महाप्रतिवक्ता श्री गुलाम ई. वाहनवती ने कहा कि राज्य का पूरा दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित है कि संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 80 के तहत संसद की विधायी शक्ति पर कथित प्रतिबंध और विशेष पुलिस अधिनियम की धारा 6 के तहत केंद्र सरकार की अधिसूचना जारी करने की शक्ति पर प्रतिबंध संवैधानिक न्यायालयों को बाध्य करता है, यानी सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय गलत हैं, क्योंकि केंद्र सरकार और संसद पर प्रतिबंधों को अनुमानित रूप से संवैधानिक न्यायालयों पर प्रतिबंध नहीं बनाया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए क्योंकि नागरिकों की रक्षा करना और उनके मौलिक अधिकारों को लागू करना उच्च न्यायालयों का दायित्व है। विद्वान वकील ने जोरदार तर्क दिया कि अपीलकर्ताओं का यह रुख कि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों द्वारा संबंधित राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना सीधे सीबीआई को जांच भेजने की शक्ति का प्रयोग संविधान

के संघीय ढांचे का उल्लंघन करेगा, फिर से गलत धारणा है क्योंकि यह इस बुनियादी तथ्य की अनदेखी करता है कि एक संघीय ढांचे में संवैधानिक मूल्यों को बनाए रखना और संविधान के अंतिम दुभाषिया के रूप में संवैधानिक सीमाओं को लागू करना अदालतों का कर्तव्य है। प्रस्ताव के समर्थन में, विद्वान वकील ने राजस्थान राज्य और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य में इस न्यायालय के फैसलों पर भरोसा रखा।

4 एस.आर. बोम्मई और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य.5 और कुलदिप नायर और अन्य। बनाम भारत संघ और अन्य.6।

11. आई. आर. कोएल्हो (डी) बाय एल. आर. बनाम तमिलनाडु राज्य में इस न्यायालय के नौ न्यायाधीशों की पीठ द्वारा हाल ही में लिए गए निर्णय पर भरोसा करते हुए विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि न्यायिक समीक्षा अपने आप में संविधान की मूल विशेषता होने के कारण, भारत के नागरिकों के मौलिक अधिकारों और संरक्षण के प्रवर्तन के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों की शक्तियों पर विधायी क्षमता के सिद्धांत द्वारा भी कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता है। विद्वान वकील ने जोर देकर कहा कि संविधान के अनुच्छेद 32 या 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अदालतें केवल न्यायिक समीक्षा के अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रही हैं और न तो किसी अधिकार क्षेत्र को हड़प रही हैं, न ही शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को ओवरराइड/अध्यारोही कर रही हैं। इस प्रस्ताव के समर्थन में कि संविधान के अनुच्छेद 32 द्वारा सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को भी प्रदत्त अधिकार क्षेत्र संविधान की मूल संरचना का एक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है, विद्वान वकील ने विशेष (1977) 3 एस. सी. सी. 592 (1994) 3 एस. सी. सी. 1 (2006) 7 एस. सी. सी. 1 (2007) 2 एस. सी. सी. 1, 1964 क संदर्भ संख्या 1964,8 , मिनर्वा मिल्स लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा रखा। 9, उर्वरक निगम कामगार

संघ (विनियमित), सिंदरी और अन्य। बनाम भारत संघ और अन्य। 10, नीलाबती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य और अन्य एल. चंद्र कुमार बनाम भारत संघ और अन्य 12। द्वारकानाथ, हिंदू अविभाजित परिवार बनाम आयकर अधिकारी, में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए। आयकर अधिकारी, विशेष सर्कल, कानपुर और एक अन्य.13, विद्वान वकील ने इस बात पर जोर दिया कि अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्तियां भी संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय के समान व्यापक और पूर्ण प्रकृति की हैं।

विचार के लिए प्रश्नः

12. यह स्पष्ट है कि किसी राज्य में पुलिस जाँच में उसकी सहमति के बिना सी. बी. आई. की भूमिका पर अपीलार्थी की आपत्ति, विशेष रूप से संविधान की सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों और राज्य के उक्त तीन अंगों के बीच शक्तियों के वितरण के संदर्भ में, केंद्र और राज्य विधानमंडलों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण के सिद्धांत पर आगे बढ़ती है।

13. विवाद की सराहना करने के लिए, संविधान [1965] 1 एस. सी. आर. 413 (1980) 3 एस. सी. सी. 625 (1981) 1 एस. सी. सी. 568 (1993) 2 एस. सी. सी. 746 (1997) 3 एस. सी. सी. 261 [1965] 3 एस. सी. आर. 536 के कुछ प्रावधानों का संक्षिप्त संदर्भ आवश्यक होगा। भारत का संविधान कई भागों में विभाजित है, प्रत्येक भाग सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं के बारे में विस्तार से बताता है। वर्तमान मामले के लिए, हम मुख्य रूप से संविधान के भाग III से संबंधित हैं, जो राज्य द्वारा मुख्य रूप से नागरिकों को और कुछ मामलों में भारत के प्रत्येक निवासी को गारंटीकृत मौलिक अधिकारों को सूचीबद्ध करता है और इसका भाग XI, जो संघ और राज्यों के बीच संबंधों से संबंधित है।

14. जिस आधार पर पश्चिम बंगाल राज्य द्वारा आक्षेपित निर्देश की शुद्धता पर सवाल उठाया जा रहा है, उसे ध्यान में रखते हुए हम सबसे पहले संविधान के भाग XI, के दायरे और उद्देश्य पर ध्यान देंगे। संविधान के अनुच्छेद 1 के अनुसार, भारत राज्यों का एक 'संघ' है, जिसका अर्थ है राज्यों का संघ। प्रत्येक संघीय प्रणाली के लिए केंद्र और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों के विभाजन की आवश्यकता होती है, जो हमारे संविधान में इसके भाग XI, द्वारा प्रभावी है। जबकि अनुच्छेद 245 से 255 विधायी शक्तियों के वितरण से संबंधित है, प्रशासनिक शक्तियों के वितरण से संबंधित अनुच्छेद 256 से लेकर 261, संविधान के तहत, संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का तीन गुना वितरण होता है, जो संविधान की सातवीं अनुसूची की तीन सूचियों द्वारा किया जाता है। जहां अनुच्छेद 245 संघ और राज्यों को विधायी शक्तियां प्रदान करता है, वहीं अनुच्छेद 246 संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण का प्रावधान करता है। हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक अनुच्छेद 246 इस प्रकार हैः

> "246. संसद और राज्यों के विधानमंडलों द्वारा बनाए गए कानूनों का विषय- (1)खंड (2) और (3) में कुछ भी होने के बावजूद, संसद को सातवीं अनुसूची (इस संविधान में "संघ सूची" के रूप में संदर्भित) में सूची I में उल्लिखित किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने की अनन्य शक्ति है।
>
> (2) खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद और, खंड (1) के अधीन रहते हुए, किसी भी राज्य के विधानमंडल को भी, सातवीं अनुसूची (इस संविधान में "समवर्ती सूची" के रूप में संदर्भित) में सूची III में प्रगणित किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने की शक्ति है।
>
> (3) खंड (1) और (2) के अधीन रहते हुए, किसी भी राज्य के विधानमंडल को किसी भी मामले के संबंध में ऐसे राज्य या उसके किसी भाग के लिए कानून बनाने की

अनन्य शक्ति है। सातवीं अनुसूची में सूची II में सूचीबद्ध (इस संविधान में 'राज्य सूची' के रूप में संदर्भित)।

(4) संसद के पास भारत के क्षेत्र के किसी भी हिस्से के लिए किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने की शक्ति है जो किसी राज्य में शामिल नहीं है, भले ही ऐसा मामला राज्य सूची में गिना गया हो।

15. यह अनुच्छेद संघ और राज्य विधानमंडलों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण से संबंधित है। सूची I या 'संघ सूची' में उन विषयों की गणना की गई है जिन पर संघ को 99 वस्तुओं या विषयों के संबंध में कानून बनाने की विशेष शक्तियां होंगी, जिनमें रक्षा आदि शामिल हैं। ; सूची II या 'राज्य सूची' में ऐसे विषय शामिल हैं, जिनमें लोक व्यवस्था, पुलिस आदि शामिल हैं, जिन पर राज्य विधानमंडल को विधान बनाने की अनन्य शक्ति होगी और सूची III संघ और राज्य विधानमंडलों को उसमें उल्लिखित मदों के संबंध में विधान बनाने की समवर्ती शक्तियां देती है। अनुच्छेद में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संसद को खंड (2) और (3) में कुछ भी निहित होने के बावजूद सूची I में उल्लिखित किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने की अनन्य शक्ति होगी। अनुच्छेद 246 (1) में अबाधित खंड संघ विधानमंडल की प्रधानता या सर्वोच्चता पर विचार करता है। यह शक्ति खंड (2) और (3) में निहित किसी भी चीज़ से जुड़ी नहीं है क्योंकि ये खंड स्वयं स्पष्ट रूप से सीमित हैं और अनुच्छेद 246 (1) में अबाधित खंड के अधीन हैं। राज्य विधानमंडल को सातवीं अनुसूची में सूची-II में उल्लिखित किसी भी मामले के संबंध में ऐसे राज्य या उसके किसी भी हिस्से के लिए कानून बनाने की विशेष शक्ति है और उसे सूची-III (समवर्ती सूची) में सूचीबद्ध किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने की भी शक्ति है। सूची-II में प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में विधान बनाने की राज्य विधानमंडल की अनन्य शक्ति का प्रयोग खंड (1) के अधीन किया जाना चाहिए, अर्थात सूची-1 में प्रणीत मामलों के संबंध

में विधान बनाने की संसद की अनन्य शक्ति। इसके परिणामस्वरूप, यदि सूची-1 में प्रविष्टि और सूची-II में प्रविष्टि के बीच कोई टकराव है, जो सुलह करने में सक्षम नहीं है, तो सूची-II में प्रणीत किसी मामले के संबंध में विधान बनाने की संसद की शक्ति को राज्य विधानमंडल की शक्ति के प्रयोग के लिए प्रतिस्थापित करना होगा। संसद और राज्य विधानमंडल दोनों के पास सूची III में उल्लिखित किसी भी मामले के संबंध में कानून बनाने की समवर्ती शक्तियां हैं। अनुच्छेद 246 (1) में खंड (2) और (3) में कुछ भी निहित होने के बावजूद और अनुच्छेद 246 (3) में "खंड (1) और (2) के अधीन" शब्द संघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत को निर्धारित करते हैं अर्थात संघ और राज्य शक्तियों के बीच अपरिहार्य संघर्ष की स्थिति में, सूची I में उल्लिखित संघ की शक्ति सूची II और III में उल्लिखित राज्य की शक्ति पर प्रबल होगी और सूची II और III के बीच अतिव्यापी होने की स्थिति में, बाद वाला प्रबल होगा। हालाँकि, निस्संदेह, संविधान राज्य विधानमंडलों पर संसद की सर्वोच्चता को प्रदर्शित करता है, फिर भी संविधान के अनुच्छेद 246 में निर्धारित संघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का तब तक सहारा नहीं लिया जा सकता जब तक कि संघ और राज्य सूचियों में प्रविष्टियों के बीच एक अपरिवर्तनीय प्रत्यक्ष संघर्ष न हो। इस प्रकार, इस व्यापक प्रस्ताव के साथ कोई विवाद नहीं है कि संविधान के तहत संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों का स्पष्ट सीमांकन है और उन्हें खुद को सौंपे गए क्षेत्र के भीतर सीमित रखना होगा। यह भी ध्यान में रखा जा सकता है कि सूचियों का कार्य शक्तियों को प्रदान करना नहीं है, वे केवल विधायी क्षेत्र का सीमांकन करते हैं। लेकिन जिस मुद्दे को हमें निर्धारित करने के लिए कहा जाता है वह यह है कि जब संविधान की योजना किसी ऐसे मामले पर संघ द्वारा अतिक्रमण को प्रतिबंधित करती है जो विशेष रूप से राज्य विधानमंडल के अधिकार क्षेत्र में आता है, जैसे कि सार्वजनिक व्यवस्था, पुलिस आदि, तो क्या राज्य का तीसरा अंग यानी न्यायपालिका, संबंधित राज्य सरकार की सहमति के बिना, केंद्र द्वारा स्थापित एजेंसी, सी. बी. आई. को राज्य के विषय के संबंध में कुछ करने का निर्देश दे सकती है?

16. इस मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए कुछ अन्य प्रासंगिक संवैधानिक और सांविधिक प्रावधानों का भी उल्लेख करना आवश्यक होगा।

17. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, विशेष पुलिस अधिनियम भारत सरकार अधिनियम, 1935 (सूची I, सातवीं अनुसूची की प्रविष्टि 39) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए गवर्नर जनरल इन काउंसिल द्वारा अधिनियमित किया गया था। उक्त प्रविष्टि इस प्रकार हैः

> "ब्रिटिश भारत के किसी भी भाग से संबंधित पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का दूसरे राज्यपाल के प्रांत या मुख्य आयुक्त के प्रांत के किसी भी क्षेत्र में विस्तार, लेकिन इस तरह से नहीं कि एक भाग की पुलिस प्रांत की सरकार या मुख्य आयुक्त की सहमति के बिना कहीं और शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में सक्षम हो; किसी भी इकाई से संबंधित पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का विस्तार उस इकाई के बाहर रेलवे क्षेत्रों में।

यह स्पष्ट है कि विशेष पुलिस अधिनियम राज्य की सहमति के बिना, एक राज्य की पुलिस को दूसरे राज्य में किए गए अपराध की जांच करने की अनुमति देने वाले किसी भी कानून को लागू करने के लिए संघीय विधानमंडल पर प्रतिबंध लगाने वाली उक्त प्रविष्टि के संदर्भ में पारित किया गया था। उक्त प्रविष्टि को भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची I की प्रविष्टि 80 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। उक्त प्रविष्टि इस प्रकार हैः

> "किसी भी राज्य से संबंधित पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का उस राज्य के बाहर किसी भी क्षेत्र में विस्तार, लेकिन इस तरह से नहीं कि एक राज्य की पुलिस उस राज्य की सरकार की सहमति के बिना उस राज्य के बाहर किसी भी क्षेत्र में शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में सक्षम हो, जिसमें

ऐसा क्षेत्र स्थित है। किसी भी राज्य से संबंधित पुलिस बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का उस राज्य के बाहर के रेलवे क्षेत्रों में विस्तार।

भारत के संविधान की सूची II की प्रविष्टि 2, जो भारत सरकार अधिनियम की प्रविष्टि 2 सूची II से मेल खाती है, पुलिस से संबंधित मामलों में राज्यों को विशेष अधिकार क्षेत्र प्रदान करती है, निम्नानुसार हैः

प्रविष्टि 2 सूची II:

"पुलिस (रेलवे और ग्राम पुलिस सहित) सूची I की प्रविष्टि 2ए के प्रावधानों के अधीन।

सूची I की प्रविष्टि 2एः

"संघ के किसी सशस्त्र बल या संघ के नियंत्रण के अधीन किसी अन्य बल या किसी राज्य में किसी दल या इकाई का नागरिक शक्ति की सहायता से विकास; ऐसी तैनाती के दौरान ऐसे बलों के सदस्यों की शक्तियां, अधिकार क्षेत्र, विशेषाधिकार और देनदारियां।

18. पूर्व-उल्लिखित संवैधानिक प्रावधानों को केवल पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि इन प्रविष्टियों के आधार पर, किसी एक राज्य के नियमित पुलिस बल को राज्य के बाहर किसी भी क्षेत्र में शक्ति और अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का प्रावधान करने की संघ की विधायी शक्ति का प्रयोग केवल उस विशेष राज्य की सरकार की सहमति से किया जा सकता है जिसमें ऐसा क्षेत्र स्थित है, किसी भी राज्य से संबंधित पुलिस बल को छोड़कर जो उस राज्य के बाहर रेलवे क्षेत्रों में शक्ति और अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर सकता है।

19. जैसा कि विशेष पुलिस अधिनियम की प्रस्तावना में कहा गया है, इसे केंद्र शासित प्रदेशों में कुछ अपराधों की जांच के लिए दिल्ली में एक विशेष बल का गठन करने

और उक्त बल के पर्यवेक्षण और प्रशासन के लिए प्रावधान करने और उक्त अपराधों की जांच के संबंध में उक्त बल के सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र के अन्य क्षेत्रों में विस्तार के लिए अधिनियमित किया गया था। धारा 1 की उप-धारा (1) विशेष पुलिस अधिनियम के शीर्षक को निर्दिष्ट करती है और उप-धारा (2) बताती है कि विशेष पुलिस अधिनियम पूरे भारत में फैला हुआ है। धारा 2 में 3 उप-खंड हैं। उप-धारा (1) केंद्र सरकार को किसी भी केंद्र शासित प्रदेश में धारा 3 के तहत अधिसूचित अपराधों की जांच के लिए दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान नामक एक विशेष पुलिस बल का गठन करने का अधिकार देती है; उप-धारा (2) उक्त पुलिस प्रतिष्ठान के सदस्यों को ऐसे अपराधों की जांच और ऐसे अपराधों में संबंधित व्यक्तियों की गिरफ्तारी के संबंध में, उस केंद्र शासित प्रदेश के पुलिस अधिकारियों को उसमें किए गए अपराधों की जांच के संबंध में सभी शक्तियां, कर्तव्य, विशेषाधिकार और देनदारियां प्रदान करती है और उप-धारा (3) में प्रावधान है कि उप-निरीक्षक के पद या उससे ऊपर के उक्त पुलिस प्रतिष्ठान का कोई भी सदस्य किसी पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी माना जाए। विशेष पुलिस अधिनियम की धारा 3 के तहत, केंद्र सरकार को उन अपराधों या अपराधों के वर्गों को निर्दिष्ट और अधिसूचित करने की आवश्यकता होती है जिनकी जांच विशेष पुलिस अधिनियम के तहत गठित दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान द्वारा की जानी है, जिसका नाम "सीबीआई" है। धारा 4 प्रतिष्ठान के प्रशासनिक नियंत्रण से संबंधित है और उप-धारा (2) के अनुसार, प्रतिष्ठान का "अधीक्षण" केंद्र सरकार में निहित है और उक्त प्रतिष्ठान का प्रशासन केंद्र सरकार द्वारा इस संबंध में नियुक्त एक अधिकारी में निहित है। विनीत नारायण और अन्य में धारा 4 (1) में "अधीक्षण" शब्द का अर्थ और इस संदर्भ में केंद्र सरकार के अधिकार के दायरे की व्याख्या करते हुए विनीत नारायण और अन्य बनाम भारत संघ और एक अन्य। 14 में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की एक पीठ ने कहाः

"40.....धारा 4 (1) में "अधीक्षण" शब्द का व्यापक अर्थ में वैधानिक प्रावधानों द्वारा प्रदान किए गए तरीके के विपरीत सी. बी. आई. द्वारा किसी अपराध की वास्तविक जांच के पर्यवेक्षण की अनुमति देने के लिए अर्थ नहीं लगाया जा सकता है। भारत संघ की ओर से व्यापक प्रस्ताव में आग्रह किया गया कि वह अधिनियम की धारा 4 (1) के तहत एक निर्देश द्वारा धारा 3 के तहत जारी अधिसूचना में निर्दिष्ट अपराध की जांच करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र को कम करने या बाधित करने के लिए सीबीआई को कोई भी निर्देश जारी कर सकता है, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। अपराध की जाँच करने के लिए सी. बी. आई. के अधिकार क्षेत्र का निर्धारण (1998) 1 एस. सी. सी. 226 धारा 3 के तहत जारी अधिसूचना के संदर्भ में किया जाना है न कि किसी अलग आदेश द्वारा जिसका वह चरित्र नहीं है।

20. विशेष पुलिस अधिनियम की धारा 5 केंद्र सरकार को धारा 3 के तहत अधिसूचना में निर्दिष्ट किसी भी अपराध या अपराधों के वर्गों की जांच के लिए किसी भी राज्य में, जो केंद्र शासित प्रदेश नहीं है, विशेष पुलिस प्रतिष्ठान की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने का अधिकार देती है और इस तरह के अधिकार क्षेत्र के विस्तार पर, प्रतिष्ठान का एक सदस्य कार्यों का निर्वहन करेगा। उस क्षेत्र में एक पुलिस अधिकारी का और इस प्रकार ऐसे कार्यों का निर्वहन करते समय, उस क्षेत्र के पुलिस बल का सदस्य माना जाएगा और उसे शक्तियां, कार्य और विशेषाधिकार दिए जाएंगे और वह उस पुलिस बल से संबंधित एक पुलिस अधिकारी की देनदारियों के अधीन होगा।

21. धारा 6, प्रमुख प्रावधान, निम्नानुसार हैः-

"6.शक्तियों और अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के लिए राज्य सरकार की सहमति। - धारा 5 में निहित कुछ भी दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के किसी भी सदस्य को उस राज्य की सरकार की सहमति के बिना किसी राज्य के किसी भी क्षेत्र में शक्तियों

और अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में सक्षम नहीं समझा जाएगा, जो केंद्र शासित प्रदेश या रेलवे क्षेत्र नहीं है।

22. इस प्रकार, यद्यपि धारा 5 (1) केंद्र सरकार को दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान के सदस्यों की शक्तियों और अधिकार क्षेत्र को राज्य के किसी भी क्षेत्र में विस्तारित करने का अधिकार देती है, लेकिन धारा 6 केंद्र सरकार की अधिकार क्षेत्र का विस्तार करने की शक्ति पर केवल संबंधित राज्य सरकार की सहमति से प्रतिबंध लगाती है।

23. विशेष पुलिस अधिनियम की धारा 5 और 6 के दायरे और विस्तार को ध्यान में रखते हुए, विचार के लिए सवाल यह है कि क्या केंद्र सरकार की शक्तियों पर लगाए गए प्रतिबंध संवैधानिक न्यायालयों पर भी उत्परिवर्तन लागू होंगे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. के. वेणुगोपाल के तर्क का मुख्य जोर यह है कि उच्च न्यायालय द्वारा राज्य की सहमति के बिना पश्चिम बंगाल राज्य में जांच करने के लिए सी. बी. आई. को निर्देश देने के लिए अपनाया गया मार्ग संघीय ढांचे के साथ-साथ राज्य के तीन अंगों के बीच शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के साथ भी असंगत है, जो संविधान में सन्निहित है, तब भी जब उच्च न्यायालय अपने समक्ष मौजूद सामग्री पर आश्वस्त था कि राज्य पुलिस 4 जनवरी, 2001 के नरसंहार की जांच के संबंध में अपने पैर पीछे खींच रही थी।

24. जहाँ तक तर्क के पहले अंग का संबंध है, इस बात पर बहुत कम जोर देने की आवश्यकता है कि, ऊपर दर्शाई गई परिस्थितियों को छोड़कर, एक संघीय संरचना में, संघ को सातवीं अनुसूची की सूची II में निर्दिष्ट मामलों के संबंध में किसी राज्य की विधायी शक्तियों का अतिक्रमण करने की अनुमति नहीं है। हालाँकि, हमारे विचार में, हाथ में मौजूद मुद्दे पर शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत की प्रयोज्यता के संबंध में विद्वान वकील के तर्क का दूसरा अंग स्पष्ट रूप से असमर्थनीय है। इस तथ्य के अलावा कि वर्तमान मामले में

केन्द्र-राज्य संबंधों का सवाल कोई मुद्दा नहीं है, एक संवैधानिक न्यायालय अपने आप में संघीय ढांचे का संरक्षक होने के कारण, संघीय संरचना सिद्धांत का आह्वान भी गलत है।

25. लिखित संविधान द्वारा शासित एक लोकतांत्रिक देश में, यह संविधान है जो सर्वोच्च और संप्रभु है। जैसा कि राजा राम पाल बनाम माननीय अध्यक्ष, लोकसभा और अन्य.15 में देखा गया है, संविधान इस देश में सर्वोच्च लेख है। इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों सहित राज्य के सभी अंग संविधान से अपना अधिकार, अधिकार क्षेत्र और शक्तियां प्राप्त करते हैं और इसके प्रति निष्ठा रखते हैं। संघीय संविधान की मूलभूत विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए, विशेष संदर्भ संख्या 1 (उपरोक्त) में, संविधान पीठ (7-न्यायाधीश) ने निम्नलिखित टिप्पणी कीः

> ".....संघवाद की अनिवार्य विशेषता 'उन निकायों के बीच सीमित कार्यकारी, विधायी और न्यायिक प्राधिकरण का वितरण है जो एक दूसरे के साथ समन्वय और स्वतंत्रत हैं'। संविधान की सर्वोच्चता एक संघीय राज्य के अस्तित्व के लिए मौलिक है ताकि संघीय इकाई या सदस्य राज्यों के विधानमंडल को शक्ति के उस नाजुक संतुलन को नष्ट या बाधित करने से रोका जा सके जो राज्यों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करता है जो संघ के इच्छुक हैं, लेकिन अपनी व्यक्तित्व को एकता में विलय करने के लिए तैयार नहीं हैं। संविधान की इस सर्वोच्चता को शक्तियों के वितरण की योजना के दुभाषिया के रूप में कार्य करने के लिए एक स्वतंत्रत न्यायिक निकाय के (2007) 3 एस. सी. सी. 184 प्राधिकरण द्वारा संरक्षित किया गया है।

26. यह मामूली बात है कि भारत में अपनाई गई संवैधानिक योजना में, संविधान की सर्वोच्चता के अलावा, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों का पृथक्करण संविधान की बुनियादी विशेषताओं का गठन करता है। वास्तव में, हमारी शासन प्रणाली में शक्तियों के पृथक्करण के महत्व को विशेष संदर्भ संख्या 1 (उपरोक्त) में मान्यता

दी गई थी, इससे पहले कि परम पूज्य केशवानंद भारती श्रीपदगलवरु बनाम केरल राज्य के प्रसिद्ध मामले में मूल संरचना सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया था, जिसमें संविधान की कुछ बुनियादी विशेषताओं का पता लगाते हुए यह राय दी गई थी कि शक्तियों का पृथक्करण संविधान की मूल संरचना का हिस्सा है। बाद में, श्रीमती इंदिरा, नेहरु, गाँधी बनाम, श्री राज नारायण और अन्य में भी इसी तरह का विचार प्रतिध्वनित किया गया। इंदिरा नेहरू गांधी बनाम श्री राज नारायण और अन्य मामलों की एक श्रृंखला में। फिर भी, इस तथ्य के अलावा कि हमारा संविधान राज्य के उक्त तीन अंगों के बीच शक्तियों के कठोर और सख्त विभाजन की परिकल्पना नहीं करता है, न्यायिक समीक्षा की शक्ति पूरी तरह से एक अलग आधार पर खड़ी है। स्वयं संविधान की मूल संरचना का हिस्सा होने के कारण, इसे संविधान संशोधन द्वारा भी हटाया या संक्षिप्त नहीं किया जा सकता है। [देखिएःएल. चंद्र कुमार बनाम। भारत संघ और अन्य (उपरोक्त)]। इसके अलावा, न्यायिक समीक्षा (1973) 4 एस. सी. सी. 225 1975 (पूरक) एस. सी. सी. 1 अन्यथा संवैधानिक शक्ति की सीमाओं के बारे में विवादों को हल करने और संविधान के अंतिम व्याख्याकार के रूप में संवैधानिक सीमाओं में प्रवेश करने के लिए आवश्यक है। 1964 के विशेष संदर्भ संख्या 1 (उपरोक्त) में, यह देखा गया कि भारतीय संविधान के तहत शक्तियों का विशिष्ट और कठोर पृथक्करण हो या न हो, इसमें कोई संदेह नहीं है कि संविधान ने इस देश में क्षेत्राधिकार को संविधान के प्रावधानों का अर्थ लगाने और नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने का कार्य सौंपा है। श्रीमती इंदिरा नेहरू गांधी (उपरोक्त), वाई. वी. चंद्रचूड़, जे./न्यायमूर्ति (उस समय उनके अधिपति के रूप में) ने एक ओर अमेरिकी और ऑस्ट्रेलियाई संविधान और दूसरी ओर भारतीय संविधान के बीच अंतर बताते हुए कहा कि शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत राज्य के तीन अंगों को उनके कार्यों की सख्त सीमा के भीतर रखने के लिए एक जादुई सूत्र नहीं है। विद्वान न्यायाधीश ने यह भी कहा कि एक संघीय प्रणाली में, जो सरकार की तीन समन्वित शाखाओं के बीच शक्तियों का वितरण करती है, हालांकि

कठोर रूप से नहीं, संवैधानिक शक्ति की सीमाओं के बारे में विवादों को अदालतों द्वारा हल किया जाना चाहिए। एक ऑस्ट्रेलियाई कानूनी विद्वान जॉर्ज व्हाइटक्रॉस पैटन को उद्धृत करते हुए, कि "न्यायिक और अन्य शक्तियों के बीच अंतर संविधान के रखरखाव के लिए महत्वपूर्ण हो सकता है", विद्वान न्यायाधीश ने कहा कि शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत संयम का एक सिद्धांत है जिसमें "आत्म-संरक्षण के विवेक में सहज धारणा है (भले ही इतिहास बार-बार घर में नहीं लाया गया हो), कि विवेक वीरता का बेहतर हिस्सा है"।

27. हाल ही में उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम जीत एस. बिष्ट और एक अन्य में एस. बी. सिन्हा, न्यायपूर्ति ने निम्नलिखित शब्दों में शक्तियों के पृथक्करण के विषय पर चर्चा कीः

> "77. हममें से कुछ लोगों के लिए शक्तियों का पृथक्करण एक पसंदीदा विषय है। संवैधानिक योजना के संदर्भ में राज्य का प्रत्येक अंग एक या दूसरे कार्य करता है जो दूसरे अंग को सौंपे गए हैं। हालांकि कानून का मसौदा तैयार करना और इसे लागू करना क्रमशः विधायिका और कार्यपालिका के कार्य हैं, लेकिन यह कहने में बहुत देर हो चुकी है कि इस संबंध में संवैधानिक न्यायालय की भूमिका मौजूद नहीं है। न्यायाधीश द्वारा निर्मित कानून अब दुनिया भर में अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है। यदि कोई सत्ता के पृथक्करण के सिद्धांत को इस तरह की कठोरता में डालता है, तो किसी भी देश के किसी भी उच्च न्यायालय के लिए, चाहे वह विकसित हो या विकासशील, व्याख्यात्मक प्रक्रिया के माध्यम से नए अधिकार पैदा करना संभव नहीं होता।
>
> 78. एक अर्थ में शक्तियों का पृथक्करण प्रत्येक अंग के सक्रिय अधिकार क्षेत्र की एक सीमा है। लेकिन इसका एक और गहरा और अधिक प्रासंगिक उद्देश्य हैः अन्य अंगों की गतिविधियों पर नियंत्रण और संतुलन के रूप में कार्य करना। इस प्रकार

संगठन के सक्रिय अधिकार क्षेत्र को चुनौती नहीं दी जाती है; फिर भी संस्था को उसकी ज्यादतियों और कर्तव्य में कमी के बारे में बताने के लिए उकसाने के तरीके हैं। संवैधानिक जनादेश राजनीति के अंगों के बीच इस संचार की गतिशीलता को निर्धारित करता है। इसलिए, यह सुझाव दिया जाता है कि शक्तियों के पृथक्करण को निर्वात में संचालन के रूप में न समझें। आधुनिक समय में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को फिर से स्थापित किया गया है।

xxx xxx xxx

80. आधुनिक दृष्टिकोण, जो आज दुनिया भर में संवैधानिक न्यायालयों में गति प्राप्त कर रहा है, न केवल नकारात्मक अर्थों में कार्य करने के क्षेत्र का सीमांकन करने के लिए है, बल्कि कार्य करने के सीमांकित क्षेत्र की न्यूनतम सामग्री को परिभाषित करने के लिए भी है। कार्य और भूमिका की उद्देश्यपूर्ण परिभाषा में उसी को निष्पादित करना शामिल है, जो हालांकि वित्तीय बाधा के अनुरोध के अधीन हो सकता है लेकिन केवल असाधारण मामलों में। ऐसी किसी भी कमी की स्थिति में, यह दूसरे अंग का आवश्यक कर्तव्य है कि वह निष्क्रियता को प्रतिस्थापित करने के लिए आवश्यक लोगों को सलाह और सिफारिश करे। इस हद तक हमें इन कठिन प्रश्नों के उत्तर तैयार करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

xxx xxx xxx

83. यदि हम शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के विकास को देखते हैं, तो पारंपरिक रूप से नियंत्रण और संतुलन का आयाम केवल सरकारी ज्यादतियों और उल्लंघनों से जुड़ा था। लेकिन आज के सकारात्मक अधिकारों और न्यायोचित सामाजिक और आर्थिक अधिकारों, संकर प्रशासनिक निकायों, सार्वजनिक कार्यों का निर्वहन करने वाले निजी कार्यकर्ताओं की दुनिया में, हमें अधिक तात्कालिकता के

साथ निरीक्षण कार्य करना होगा और सरकारी निष्क्रियता को शामिल करने के लिए नियंत्रण और संतुलन के क्षेत्र को बढ़ाना होगा। अन्यथा हम कल्पना करते हैं कि देश आराम की स्थिति में बदल जाएगा। इसलिए सामाजिक इंजीनियरिंग के साथ-साथ संस्थागत इंजीनियरिंग इस दायित्व का हिस्सा है।

28. शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के दायरे और विस्तार पर चर्चा करने के बाद, वर्तमान मामले में विचार करने के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जब संविधान के भाग III में निहित मौलिक अधिकार, जिसमें समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14); बोलने की स्वतंत्रता (अनुच्छेद 19 (1) (ए)) और कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया (अनुच्छेद 21) के अलावा जीवन और स्वतंत्रता से वंचित नहीं होने का अधिकार शामिल है, जिसका उल्लंघन किया जाता है, जैसा कि तत्काल मामले में आरोप लगाया गया है, तो क्या उनके उल्लंघन को विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के आधार पर न्यायिक जांच से सुरक्षित किया जा सकता है। इसे अलग तरीके से कहें तो क्या शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत संवैधानिक न्यायालयों को प्रदान की गई न्यायिक समीक्षा की शक्ति को कम कर सकता है, ऐसी स्थितियों में भी जहां मौलिक अधिकारों को इस आधार पर निरस्त या संक्षिप्त करने की मांग की जाती है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग उक्त सिद्धांत पर प्रभाव डालेगा?

29. संविधान एक जीवित और जैविक दस्तावेज है। यह स्थिर नहीं रह सकता है और इसे राष्ट्र के साथ आगे बढ़ना चाहिए। संवैधानिक प्रावधानों को बदलती परिस्थितियों और समय और राजनीति की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए व्यापक और उदारता से समझा जाना चाहिए। केहर सिंह और एक अन्य बनाम। भारत संघ और एक अन्य. 20 मे संविधान पीठ, के लिए बोलते हुए आर. एस. पाठक, मुख्य न्यायाधीश ने माना कि कि आधुनिक संवैधानिक प्रथा को ध्यान में रखते हुए, भारत का संविधान एक संवैधानिक दस्तावेज है, जो

देश के शासन के लिए मौलिक है, जिसके द्वारा भारत के लोगों ने एक संवैधानिक व्यवस्था प्रदान की है जिसमें कुछ प्राथमिक अंग, संस्थान और कार्यकर्ता शामिल हैं जो एक संवैधानिक व्यवस्था को लागू करने, बनाए रखने और संचालित करने के इरादे से हैं। संविधान की व्याख्या के पहलू पर, लॉसन ए. डब्ल्यू. हंटर और अन्य बनाम साउथम इंक 21 में कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति (1989) 1 एस. सी. सी. 204 डिक्सन की निम्नलिखित टिप्पणियां काफी उपयुक्त हैंः

> "संविधान की व्याख्या करने का कार्य कानून बनाने से काफी अलग होता है। एक क़ानून वर्तमान अधिकारों और दायित्वों को परिभाषित करता है। इसे आसानी से लागू किया जाता है और उतनी ही आसानी से निरस्त किया जाता है। इसके विपरीत, एक संविधान का मसौदा भविष्य को ध्यान में रखते हुए तैयार किया जाता है। इसका कार्य सरकारी शक्ति के वैध प्रयोग के लिए एक निरंतर ढांचा प्रदान करना है और जब किसी विधेयक या अधिकारों के चार्टर से जोड़ा जाता है, तो व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रताओं के निरंतर संरक्षण के लिए। एक बार अधिनियमित होने के बाद, इसके प्रावधानों को आसानी से निरस्त या संशोधित नहीं किया जा सकता है। इसलिए, इसे समय के साथ विकास और विकास करने में सक्षम होना चाहिए ताकि नई सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक वास्तविकताओं का सामना किया जा सके जो अक्सर इसके निर्माताओं द्वारा कल्पना नहीं की जाती हैं। न्यायपालिका संविधान की संरक्षक है और इसके प्रावधानों की व्याख्या करते समय इन विचारों को ध्यान में रखना चाहिए।

30. एम. नागराज और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य .22 मे संविधान पीठ की ओर से बोलते हुए, एस. एच. कपाडिया, न्यायमूर्ति ने निम्नलिखित टिप्पणी कीः

"संविधान एक अल्पकालिक कानूनी दस्तावेज नहीं है जिसमें गुजरते समय के लिए कानूनी नियमों का एक समूह शामिल है। यह एक विस्तारित भविष्य के लिए सिद्धांतों को निर्धारित करता है और इसका उद्देश्य आने वाले युगों तक टिके रहना है और इसके परिणामस्वरूप मानव मामलों के विभिन्न संकटों के अनुकूल होना है। इसलिए, व्याख्या के लिए एक सख्त शाब्दिक दृष्टिकोण के बजाय एक उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। एक संवैधानिक प्रावधान को संकीर्ण और संकुचित अर्थों में नहीं बल्कि व्यापक और उदार तरीके से समझा जाना चाहिए ताकि बदलती स्थितियों और उद्देश्यों का अनुमान लगाया जा सके और उन्हें ध्यान में रखा जा सके ताकि एक संवैधानिक प्रावधान जीवाश्म न हो, बल्कि नई उभरती समस्यओं और चुनौतियो को पूरा करने के लिए पर्याप्त लचीला बना रहे।

[जोर दिया गया]

31. हाल ही में, आई. आर. कोएल्हो (उपरोक्त) मामले में, संवैधानिक प्रावधानों की व्याख्या के लिए प्रासंगिक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, वाई. के. सभरवाल, मुख्य न्यायाधीश ने इस न्यायालय के नौ न्यायाधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए निम्नलिखित टिप्पणी कीः

"संवैधानिकता का सिद्धांत अब एक कानूनी सिद्धांत है जिसके लिए सरकारी शक्ति के प्रयोग पर नियंत्रण की आवश्यकता होती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह उन लोकतांत्रिक सिद्धांतों को नष्ट नहीं करता है जिन पर यह आधारित है। इन लोकतांत्रिक सिद्धांतों में मौलिक अधिकारों का संरक्षण शामिल है। संविधानवाद का सिद्धांत शक्तियों के पृथक्करण के एक नियंत्रण और संतुलन मॉडल की वकालत करता है; इसके लिए शक्तियों के प्रसार की आवश्यकता होती है, जिससे निर्णय लेने के विभिन्न स्वतंत्रत केंद्रों की आवश्यकता होती है। संविधानवाद का सिद्धांत वैधता

के सिद्धांत को रेखांकित करता है जिसके लिए न्यायालयों को इस धारणा पर कानून की व्याख्या करने की आवश्यकता होती है कि संसद मौलिक अधिकारों के विपरीत कानून नहीं बनाना चाहेगी। विधायिका मौलिक अधिकारों को प्रतिबंधित कर सकती है लेकिन मौलिक अधिकारों की रक्षा करने वाले कानूनों को भविष्य के कानूनों द्वारा निहित रूप से निरस्त करना असंभव है।

यह देखते हुए कि सामान्य कानून के माध्यम से मौलिक संवैधानिक अधिकारों का संरक्षण सामान्य कानून संवैधानिकता की मुख्य विशेषता है, न्यायालय ने आगे कहाः

"नियंत्रित संविधान के तहत, नियंत्रण और संतुलन के सिद्धांतों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इंग्लैंड में भी जहां संसद संप्रभु है, लॉर्ड स्टेन ने कहा है कि कुछ परिस्थितियों में, अदालतों को संसदीय संप्रभुता के सिद्धांत को संशोधित करने के लिए मजबूर किया जा सकता है, उदाहरण के लिए, उन मामलों में जहां न्यायिक समीक्षा को समाप्त करने की मांग की जाती है। इसके द्वारा न्यायपालिका संवैधानिकता के एक सीमित रूप की रक्षा कर रही है, यह सुनिश्चित करते हुए कि सरकार में उनकी संस्थागत भूमिका बनी रहे।

32. भारत का संविधान स्पष्ट रूप से इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों को क्रमशः अनुच्छेद 32 और 226 के तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रदान करता है। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 32 को संविधान की आत्मा बताया। इसका दिल-सबसे महत्वपूर्ण लेख। अब तक, यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि संविधान के उक्त अनुच्छेदों के तहत सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में निहित न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान का एक अभिन्न अंग और आवश्यक विशेषता है, जो इसकी मूल संरचना का हिस्सा है। इसलिए, आम तौर पर, विधानों की संवैधानिक वैधता का परीक्षण करने की उच्च न्यायालय और इस न्यायालय की शक्ति को कभी भी समाप्त या संक्षिप्त नहीं किया जा सकता है। इसके

अलावा, संविधान का अनुच्छेद 13 न केवल संविधान पूर्व कानूनों को उस हद तक अमान्य घोषित करता है, जिस हद तक वे मौलिक अधिकारों के साथ असंगत हैं, यह राज्य को ऐसा कानून बनाने से भी रोकता है जो या तो पूरी तरह से छीन लेता है या आंशिक रूप से मौलिक अधिकार को निरस्त कर देता है। इसलिए, कानूनों की न्यायिक समीक्षा हमारे संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के साथ पठित अनुच्छेद 13 के आधार पर संविधान में अंतर्निहित है। यह स्पष्ट है संविधान के अनुच्छेद 245 की भाषा से कि संसद या राज्य विधानमंडलों की सभी विधायी शक्तियों को स्पष्ट रूप से संविधान के अन्य प्रावधानों के अधीन बनाया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से संविधान के भाग III में प्रदत्त अधिकार शामिल होंगे। इस प्रकार प्रदत्त किसी भी अधिकार का उल्लंघन होता है या नहीं, यह केवल संवैधानिक न्यायालयों द्वारा तय किया जाना है, जो न केवल किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करने के लिए सशक्त हैं, बल्कि इस उद्देश्य के लिए अनिवार्य, प्रमाणपत्र, बंदी प्रत्यक्षीकरण, निषेध और यथास्थिति वारंट के निर्देश या आदेश या रिट जारी करके मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए भी सशक्त हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि संविधान का अनुच्छेद 32 संविधान के भाग III में भी निहित है, जो मौलिक अधिकारों की गणना करता है न कि संविधान के अन्य अनुच्छेदों के साथ जो सर्वोच्च न्यायालय के सामान्य अधिकार क्षेत्र को परिभाषित करते हैं। इस प्रकार, अपने आप में एक मौलिक अधिकार होने के नाते, यह सुनिश्चित करना इस न्यायालय का कर्तव्य है कि किसी भी वैधानिक या संवैधानिक प्रावधान द्वारा किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन या संक्षिप्त नहीं किया जाए। इसके अलावा, अनुच्छेद 32 के खंड (2) में प्रयुक्त "प्रकृति में" अभिव्यक्ति से यह भी स्पष्ट है कि उक्त खंड द्वारा प्रदत्त शक्ति व्यापक शब्दों में है और उक्त खंड में निर्दिष्ट उच्च विशेषाधिकार रिट जारी करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसके दायरे में कोई भी निर्देश या आदेश या रिट जारी करने की शक्ति शामिल है जो मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उपयुक्त हो सकती है। इसलिए, जब इनमें से किसी भी रिट को जारी करने की शर्तों को पूरा

नहीं किया जाता है, तब भी यह न्यायालय निराशा में हाथ मिलाने और न्यायिक निवारण के लिए उसके सामने आए नागरिक की मदद करने में अपनी असमर्थता का अनुरोध करने के लिए विवश नहीं होगा। (पी. एन. भगवती के अनुसार, न्यायामूर्ति बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ और अन्य में 23)

33. इस संदर्भ में, नीलाबती बेहरा (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ देना लाभदायक होगा। अदालत ने खत्री और अन्य (II) बनाम बिहार राज्य और अन्य 24 मामलों में इस अदालत द्वारा व्यक्त किए गए विचार से सहमति व्यक्त की। और खत्री और अन्य। (IV) बनाम बिहार राज्य और अन्य.25, जिसमें यह कहा गया था कि न्यायालय जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार के उल्लंघन के मामले में राहत देने में असहाय नहीं है, और इन बहुमूल्य मौलिक अधिकारों को सही साबित करने के उद्देश्य से "नए उपकरण बनाने और नए उपचार तैयार करने" के लिए तैयार रहना चाहिए। यह भी संकेत दिया गया था कि गारंटीकृत मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए राहत देने के लिए, जो निवारण का उपलब्ध तरीका हो सकता है, आवश्यक तथ्यों का पता लगाने के लिए आवश्यक जांच करने के लिए मामले के तथ्यों में उपयुक्त प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए। डॉ. ए. एस. आनंद, न्यायमूर्ति (तत्कालीन स्वामी के रूप में) ने अपने सहमति वाले फैसले में कहाः

> "35. इस न्यायालय और उच्च न्यायालय के पास, नागरिक की नागरिक स्वतंत्रताओं के संरक्षक होने के नाते, न केवल शक्ति और अधिकार क्षेत्र है, बल्कि पीड़ित या पीड़ित के उत्तराधिकारी को संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए राहत देने का दायित्व भी है, जिनके (1984) 3 एस. सी. सी. 161 (1981) 1 एस. सी. सी. 627 (1981) 2 एस. सी. सी. 493 के अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकार स्थापित किए गए हैं। नागरिक को दीवानी

मुकदमे या आपराधिक कार्यवाही के माध्यम से उपचार के लिए। राज्य को निश्चित रूप से क्षतिपूर्ति पाने और उचित कार्यवाही के माध्यम से कानून के अनुसार गलत काम करने वाले के खिलाफ ऐसी कार्रवाई करने का अधिकार है जो उसके लिए उपलब्ध हो।

34. यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, अनुच्छेद 32 और 142 के अलावा, जो इस न्यायालय को ऐसे निर्देश जारी करने का अधिकार देता है, जो किसी भी कारण या मामले में पूर्ण न्याय करने के लिए आवश्यक हो सकते हैं, संविधान का अनुच्छेद 144 भारत के क्षेत्र में सभी प्राधिकरणों, दीवानी या न्यायिक, को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की सहायता के लिए कार्य करने का आदेश देता है।

35. जहाँ तक उच्च न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक समीक्षा की शक्ति का संबंध है, निस्संदेह वे एक तरह से व्यापक हैं। उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को मौलिक अधिकारों को लागू करने और "किसी अन्य उद्देश्य के लिए" निर्देश, आदेश या रिट जारी करने के लिए अधिकृत हैं। संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के वाक्यांशों में अंतर से यह स्पष्ट है कि इन दोनों अनुच्छेदों द्वारा प्रदत्त अधिकार की प्रकृति और उद्देश्य में स्पष्ट अंतर है। जबकि अनुच्छेद 32 द्वारा गारंटीकृत अधिकार का प्रयोग केवल संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए किया जा सकता है, अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त अधिकार का प्रयोग न केवल मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के लिए किया जा सकता है, बल्कि "किसी अन्य उद्देश्य के लिए" भी किया जा सकता है, अर्थात किसी क़ानून आदि द्वारा प्रदत्त किसी भी कानूनी अधिकार के प्रवर्तन के लिए।

36. तिरुपति बालाजी डेवलपर्स (पी) लिमिटेड और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य. 26 में इस न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की थीः

"8. न्यायपालिका के लिए बनाई गई संवैधानिक योजना के तहत, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों अभिलेख की अदालतें हैं। उच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय का "अधीनस्थ" न्यायालय नहीं है। एक प्रकार से उच्च न्यायालय में निहित न्यायिक शक्तियों का प्रभाव व्यापक है क्योंकि संविधान के भाग III द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार को लागू करने और किसी अन्य उद्देश्य के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त सभी विशेषाधिकार रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र है, जबकि विशेषाधिकार रिट जारी करने का सर्वोच्च न्यायालय का मूल अधिकार क्षेत्र मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन और ऐसे कुछ मामलों, जैसे राष्ट्रपति चुनाव या अंतर-राज्यीय विवादों, जिन्हें संविधान उच्च न्यायालयों द्वारा सुने जाने और निर्धारित करने की परिकल्पना नहीं करता है, से निपटने तक ही सीमित है।

37. द्वारकानाथ के मामले (उपरोक्त) में, इस न्यायालय ने कहा था कि संविधान का अनुच्छेद 226 व्यापक वाक्यांशों में निहित है और यह उच्च न्यायालय को जहाँ भी अन्याय पाया जाता है, वहाँ पहुँचने की व्यापक शक्ति प्रदान करता है। यह अनुच्छेद उच्च न्यायालयों को मामले की विशिष्ट और असाधारण परिस्थितियों से निपटने के लिए राहतों को ढालने में सक्षम बनाता है। इसलिए, अनुच्छेद 32 के तहत इस (2004) 5 एस. सी. सी. 1 न्यायालय द्वारा अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के संबंध में हमने जो ऊपर कहा है, वह संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों द्वारा अधिकार क्षेत्र के प्रयोग के संबंध में समान रूप से लागू होना चाहिए।

38. संविधान के भाग III में निहित मौलिक अधिकारों में से एक अनुच्छेद 21 घोषणा करता है कि किसी भी व्यक्ति को उसके "जीवन" या "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" से वंचित

नहीं किया जाएगा। कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार को छोड़कर। यह सामान्य बात है कि अनुच्छेद में "जीवन" और "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" शब्दों का उपयोग जीवन के उन सभी प्रकारों को शामिल करने के लिए किया गया है जो एक व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बनाते हैं और न कि केवल व्यक्ति के पशु अस्तित्व के बने रहने का अधिकार। (देखिएः खरक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य-27)

39. केहर सिंह (उपरोक्त) में संविधान पीठ ने "जीवन" और "व्यक्तिगत स्वतंत्रता" के अधिकार की सर्वोच्चता पर प्रकाश डाला था। यह इस प्रकार देखा गयाः

> "किसी भी सभ्य समाज के लिए, उसके सदस्यों के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से अधिक महत्वपूर्ण कोई विशेषता नहीं हो सकती है। यह संविधान के अनुच्छेद 21 को अदालतों द्वारा दी गई सर्वोच्च स्थिति से स्पष्ट है। ये दोहरे गुण राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था के अन्य सभी गुणों पर एक मौलिक प्रभुत्व का आनंद लेते हैं, और परिणामस्वरूप, विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका दैनिक अस्तित्व के अन्य गुणों की तुलना में उनके प्रति अधिक संवेदनशील हैं। अधिकांश सभ्य समाजों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित होने और राज्य की कार्रवाई से जीवन से वंचित होने के खतरे को गंभीरता से लिया जाता है और या तो व्यक्त संवैधानिक प्रावधान के तहत या विधायी अधिनियम के माध्यम से न्यायिक निकाय को प्रदान किया जाता है।

(1964) 1 एससीआर 332

40. मिनर्वा मिल्स (उपरोक्त) में, वाई. वी. चंद्रचूड़, मुख्य न्यायधीश ने बहुमत के लिए बोलते हुए कहा कि अनुच्छेद 14 और 19 कोई काल्पनिक अधिकार प्रदान नहीं करते हैं। वे ऐसे अधिकार प्रदान करते हैं जो लोकतंत्र के उचित और प्रभावी संचालन के लिए प्राथमिक हैं। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा द्वारा उन्हें सार्वभौमिक रूप से माना

जाता है। यदि अनुच्छेद 14 और 19 को प्रभाव से बाहर कर दिया जाता है, तो अनुच्छेद 32 उसके जीवन रक्त को समाप्त कर देगा। अनुच्छेद 14,19 और 21 के महत्व पर जोर देते हुए, विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने टिप्पणी कीः

> "74. हमारे संविधान के तीन अनुच्छेद, और केवल तीन, स्वतंत्रता के स्वर्ग के बीच खड़े हैं जिसमें टैगोर चाहते थे कि उनका देश जागृत हो और अनियंत्रित शक्ति का रसातल। वे अनुच्छेद 14,19 और 21 हैं। अनुच्छेद 31-सी ने उस स्वर्णिम त्रिकोण के दो पक्षों को हटा दिया है जो इस देश के लोगों को यह आश्वासन देता है कि प्रस्तावना द्वारा किया गया वादा मौलिक अधिकारों के अनुशासन के माध्यम से एक समतावादी युग की शुरुआत करके पूरा किया जाएगा, यानी स्वतंत्रता और समानता के अधिकारों को कम किए बिना जो अकेले व्यक्ति की गरिमा को बनाए रखने में मदद कर सकता है।

41. मौलिक अधिकारों की व्याख्या में दृष्टिकोण को एम. नागराज (उपरोक्त) में फिर से उजागर किया गया है, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की हैः

> "व्याख्या का यह सिद्धांत विशेष रूप से मौलिक अधिकारों की व्याख्या के लिए उपयुक्त है। मौलिक अधिकारों को अपने नागरिकों के लिए राज्य की ओर से एक उपहार के रूप में मानना एक भ्रांति है। व्यक्तियों के पास किसी भी संविधान से स्वतंत्र रूप से बुनियादी मानवाधिकार हैं क्योंकि वे मूल तथ्य हैं कि वे मानव जाति के सदस्य हैं। ये मौलिक अधिकार महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनका आंतरिक मूल्य है। संविधान का भाग-III मौलिक अधिकार प्रदान नहीं करता है। यह उनके अस्तित्व की पुष्टि करता है और उन्हें सुरक्षा देता है। इसका उद्देश्य राजनीतिक विरोधाभास से कुछ विषयों को हटाना। उन्हें बहुमत और अधिकारियों की पहुंच से बाहर रखने और उन्हें अदालतों द्वारा लागू किए जाने वाले कानूनी सिद्धांतों के रूप में स्थापित करने

के लिए विवाद है। हर अधिकार की एक सामग्री होती है। प्रत्येक मूलभूत मूल्य को भाग-III में मौलिक अधिकार के रूप में रखा गया है क्योंकि इसका आंतरिक मूल्य है। इसके विपरीत लागू नहीं होता है। एक अधिकार एक मौलिक अधिकार बन जाता है क्योंकि इसका मूलभूत मूल्य होता है। सिद्धांतों के अलावा, किसी को उस अनुच्छेद की संरचना को भी देखना होगा जिसमें मौलिक मूल्य शामिल है। मौलिक अधिकार राज्य की शक्ति पर एक सीमा है। एक संविधान, और विशेष रूप से उसका वह संविधान, जो मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की रक्षा करता है और जो राज्य के सभी व्यक्तियों को हकदार बनाता है, को एक उदार और उद्देश्यपूर्ण निर्माण दिया जाना चाहिए। सकल पेपर्स (पी) लिमिटेड बनाम। भारत संघ 28 में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि मौलिक अधिकारों की प्रकृति और विषय-वस्तु पर विचार करते हुए, न्यायालय को भाषा की शाब्दिक अर्थों में व्याख्या करने के लिए बहुत चतुर नहीं होना चाहिए ताकि उन्हें कम किया जा सके। न्यायालय को संविधान की व्याख्या इस तरह से करनी चाहिए जो नागरिकों को उसके द्वारा गारंटीकृत अधिकारों का पूरा लाभ उठाने में सक्षम बनाए। भारतीय संविधान में एक महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार की शाब्दिक और संकीर्ण व्याख्या का एक उदाहरण ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य 29 में सर्वोच्च न्यायालय का प्रारंभिक निर्णय है। संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रावधान है कि किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। उच्चतम न्यायालय ने बहुमत से अभिनिर्धारित किया कि 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' का अर्थ संसद या राज्य की विधानसभाओं द्वारा बनाई गई विधि द्वारा स्थापित कोई भी प्रक्रिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ प्रक्रिया को लागू करने से इनकार कर दिया। यह पूरी तरह से अधिनियमित कानून के अस्तित्व पर केंद्रित था। तीन दशकों के बाद, सर्वोच्च न्यायालय ने ए. के. गोपालन मामले में

अपने पिछले फैसले को खारिज कर दिया और मेनका गांधी बनाम भारत संघ मामले में अपने ऐतिहासिक फैसले में कहा कि अनुच्छेद 21 द्वारा विचार की गई प्रक्रिया को तर्कसंगतता की कसौटी का जवाब देना चाहिए। न्यायालय ने ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 305 ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 27 (1978) 1 एस. सी. सी. 248 में कहा कि प्रक्रिया भी प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होनी चाहिए। यह उदाहरण मौलिक अधिकार की विस्तृत व्याख्या के एक उदाहरण को प्रदर्शित करने के लिए दिया गया है। अनुच्छेद 21 में 'जीवन' शब्द का अर्थ केवल भौतिक या पशु अस्तित्व नहीं है। जीवन के अधिकार में मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार शामिल है। इस न्यायालय ने कई मामलों में मौलिक विशेषताओं का अनुमान लगाया है जिनका विशेष रूप से भाग-III में इस सिद्धांत पर उल्लेख नहीं किया गया है कि कुछ अनिर्दिष्ट अधिकार गणना की गई गारंटी में निहित हैं।

42. इस प्रकार, ए. के. गोपालन (उपरोक्त) में इस न्यायालय की यह राय कि किसी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित 'किसी भी' प्रक्रिया द्वारा उसकी स्वतंत्रता से वंचित किया जा सकता है और उस प्रक्रिया की निष्पक्षता में जाना न्यायालय के लिए नहीं था, मेनका गांधी (उपरोक्त) में किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता में गंभीर कटौती के रूप में माना गया था और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जो कानून किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करता है वह भी सही, न्यायसंगत और निष्पक्ष होना चाहिए और मनमाना, काल्पनिक या दमनकारी नहीं होना चाहिए। यह निर्णय संविधान के अनुच्छेद 21 के संबंध में कानून के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था, जिसके बाद कई निर्णय लिए गए। इस न्यायालय ने अनुच्छेद 21 में "जीवन" शब्द के सही अर्थ का पता लगाया और अंत में यह राय दी कि जीवन के वे सभी पहलू, जो किसी व्यक्ति को मानवीय गरिमा के साथ जीने के लिए प्रेरित करते हैं, "जीवन" शब्द के अर्थ में शामिल हैं।

43. विशेष रूप से आई. आर. कोएल्हो (उपरोक्त) में संविधान के अनुच्छेद 14,19 और 21 के संदर्भ में संवैधानिक संप्रभुता की न्यायिक समीक्षा के दायरे पर टिप्पणी करते हुए, इस न्यायालय ने कहाः

> "संसदीय और संवैधानिक संप्रभुता में अंतर है। हमारा संविधान एक संविधान सभा द्वारा बनाया गया है जो संसद नहीं थी। यह संविधान सभा द्वारा कानून बनाने की शक्ति का प्रयोग है कि हमारे पास एक नियंत्रित संविधान है। अनुच्छेद 14,19,21 उन मूलभूत मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कानून के शासन का आधार हैं। ये संवैधानिकता के सिद्धांत हैं जो कानून के शासन और शक्तियों के पृथक्करण के अलावा न्यायिक समीक्षा का आधार बनते हैं। यदि भविष्य में, न्यायिक समीक्षा को संवैधानिक संशोधन द्वारा समाप्त किया जाना था, जैसा कि लॉर्ड स्टेन कहते हैं, तो इंग्लैंड में भी संसदीय संप्रभुता के सिद्धांत पर फिर से विचार करने की आवश्यकता होगी। पिछले कुछ वर्षों में इंग्लैंड में इस तरह से कानून का विकास हुआ है। ऐसे मामलों में ही केशवानंद भारती मामले (उपरोक्त) में प्रस्तावित बुनियादी संरचना के सिद्धांत को लागू करना पड़ता है।

यह देखते हुए कि संविधान के अध्याय III के तहत मौलिक अधिकारों के निरसन या संक्षिप्तकरण की व्यापक व्याख्या पर जांच की जानी चाहिए ताकि नागरिक भाग III द्वारा गारंटीकृत अधिकारों का पूरा लाभ उठा सकें, न्यायालय ने शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को निम्नानुसार समझायाः(एससीसी पृष्ठ 86- 87, पैरा 64-66) ". [i] यह सदियों पहले तय किया गया था कि स्वतंत्रता के संरक्षण और अत्याचार की रोकथाम के लिए तीन अलग-अलग अंगों में अलग-अलग शक्तियां निहित करना बिल्कुल आवश्यक है। द फेडरलिस्ट संख्या 47,48 और 51 में, जेम्स मैडिसन ने विस्तार से बताया कि कैसे शक्तियों का पृथक्करण स्वतंत्रता को संरक्षित करता है और अत्याचार को रोकता है। द फेडरलिस्ट संख्या

47 में, मैडिसन ने कानून की भावना में शक्तियों के पृथक्करण के बारे में मोंटेस्क्यू के व्यवहार पर चर्चा की, (पुस्तक XI, अध्याय 6)।

वहाँ मोंटेस्क्यू लिखते हैं, "जब विधायी और कार्यकारी शक्तियाँ एक ही व्यक्ति में, या दंडाधिकारीयो के एक ही निकाय में एकजुट होती हैं, तो कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती है। फिर, कोई स्वतंत्रता नहीं है, अगर न्यायिक शक्ति को विधायी और कार्यपालिका से अलग नहीं किया जाता है। "

मैडिसन बताती हैं कि मोंटेस्क्यू ने यह महसूस नहीं किया कि विभिन्न शाखाओं में अतिव्यापी कार्य नहीं हो सकते हैं, बल्कि यह कि सरकार के एक विभाग की शक्ति पूरी तरह से सरकार के दूसरे विभाग के हाथों में नहीं होनी चाहिए।

अलेक्जेंडर हैमिल्टन ने द फेडरलिस्ट संख्या.78 में, शक्तियों के पृथक्करण और लोगों के अधिकारों को संरक्षित करने के लिए न्यायपालिका की स्वतंत्रता के महत्व पर टिप्पणी की हैः

> "एक सीमित संविधान में न्याय की अदालतों की पूर्ण स्वतंत्रता विशेष रूप से आवश्यक है।
>
> एक सीमित संविधान द्वारा, मैं एक ऐसे संविधान को समझता हूं जिसमें विधायी प्राधिकरण के लिए कुछ निर्दिष्ट अपवाद शामिल हैं; उदाहरण के लिए, कि यह प्राप्तकर्ता के किसी भी विधेयक को पारित नहीं करेगा, कोई पूर्व कार्योत्तर कानून नहीं, और इसी तरह। इस तरह की सीमाओं को व्यवहार में न्याय के न्यायालयों के माध्यम के अलावा किसी अन्य तरीके से संरक्षित नहीं किया जा सकता है, जिनका कर्तव्य यह होना चाहिए कि वे सभी कार्यों को न्याय के स्पष्ट सिद्धांत के विपरीत

घोषित करें। संविधान अमान्य है। इसके बिना, विशेष अधिकारों या विशेषाधिकारों के सभी आरक्षण शून्य के बराबर होंगे।

मोंटेस्क्यू पाते हैं कि अत्याचार तब व्याप्त हो जाता है जब शक्तियों का कोई अलगाव नहीं होता हैः

"एक ही व्यक्ति या एक ही निकाय, चाहे वह रईसों का हो या लोगों का, उन तीन शक्तियों का प्रयोग करना, कानून बनाना, सार्वजनिक प्रस्तावों को लागू करना और व्यक्तियों के कारणों का परीक्षण करना, सब कुछ समाप्त हो जाएगा।

न्यायालय ने आगे कहाः(एस. सी. सी. पृष्ठ.105, पैरा 129 -130) "समानता, कानून का शासन, न्यायिक समीक्षा और शक्तियों का पृथक्करण संविधान की मूल संरचना के अंग हैं। इनमें से प्रत्येक अवधारणा घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई है। अगर कानून के सामने समानता नहीं है तो कानून का शासन नहीं हो सकता है। यदि उल्लंघन न्यायिक समीक्षा के अधीन नहीं था तो ये अर्थहीन होंगे। यदि विधायी, कार्यकारी और न्यायिक शक्तियाँ एक निकाय में निहित हैं तो ये सभी अनावश्यक होंगे। इसलिए, यह तय करने का कर्तव्य न्यायपालिका पर डाल दिया गया है कि क्या सीमाओं का उल्लंघन किया गया है।

यह समझते हुए कि मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन को सुरक्षित करना आवश्यक है, इस तरह के प्रवर्तन की शक्ति संविधान द्वारा सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों में निहित की गई है। न्यायिक समीक्षा संविधान की एक अनिवार्य विशेषता है। यह भाग III और संविधान के अन्य भागों में सन्निहित संविधान के उद्देश्यों के लिए व्यावहारिक सामग्री प्रदान करता है। यह ध्यान दिया जा सकता है कि केवल यह तथ्य कि समानता जो मूल संरचना का एक हिस्सा है, उसे सीमित उद्देश्य के लिए, कुछ प्रकार के कानूनों की रक्षा के लिए बाहर रखा जा सकता है, इसे मूल संरचना का हिस्सा बनने से नहीं रोकता है। इसलिए, यह इस प्रकार है कि यह विचार करते हुए कि क्या संविधान की कोई विशेष विशेषता मूल

संरचना का हिस्सा है-कानून का शासन, शक्ति का पृथक्करण-तथ्य यह है कि सीमित अपवाद सीमित उद्देश्यों के लिए किए जाते हैं, कुछ निश्चित प्रकार के कानूनों की रक्षा के लिए, इसका मतलब यह नहीं है कि यह मूल संरचना का हिस्सा नहीं है।

निष्कर्ष

44. इस प्रकार, संवैधानिक योजना के संदर्भ में प्रतिद्वंद्वी विवादों की जांच करने के बाद, हम इस प्रकार निष्कर्ष निकालते हैंः

(i) संविधान के भाग III में निहित मौलिक अधिकार अंतर्निहित हैं और किसी भी संवैधानिक या सांविधिक प्रावधान द्वारा समाप्त नहीं किए जा सकते हैं। कोई भी कानून जो ऐसे अधिकारों को निरस्त या कम करता है, वह मूल संरचना सिद्धांत का उल्लंघन होगा। यह निर्धारित करने में कि क्या यह मूल संरचना को नष्ट करता है या नहीं, भाग III के तहत गारंटीकृत अधिकारों पर कानून के वास्तविक प्रभाव और प्रभाव को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(ii) संविधान का अनुच्छेद 21 अपने व्यापक परिप्रेक्ष्य में कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा व्यक्तियों के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहता है। उक्त अनुच्छेद अपने व्यापक अनुप्रयोग में न केवल अभियुक्त के अधिकारों के प्रवर्तन को बल्कि पीड़ित के अधिकारों को भी अपने दायरे में लेता है। राज्य का कर्तव्य है कि वह एक नागरिक के मानवाधिकारों को लागू करे जो निष्पक्षता प्रदान करते हैं। संज्ञेय अपराध करने के आरोपी किसी भी व्यक्ति के खिलाफ जांच, जिसमें उसके अपने अधिकारी शामिल हो सकते हैं। कुछ स्थितियों में अपराध का एक गवाह भी राज्य द्वारा सुरक्षा की मांग कर सकता है और उसे सुरक्षा प्रदान की जाएगी।

(III) संवैधानिक योजना और अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय को और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालयों को प्रदत्त अधिकार क्षेत्र को देखते हुए न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान की मूल संरचना का एक अभिन्न अंग होने के कारण, संसद का कोई भी अधिनियम मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन के संबंध में संवैधानिक न्यायालयों की शक्तियों को बहिष्कृत या कम नहीं कर सकता है। वास्तव में, ऐसी शक्ति भाग III और संविधान के अन्य भागों में सन्निहित संविधान के उद्देश्यों को व्यावहारिक सामग्री देने के लिए आवश्यक है। इसके अलावा, एक संघीय संविधान में, संसद और राज्य विधानमंडल के बीच विधायी शक्तियों के वितरण में विधायी शक्तियों पर सीमाएं शामिल हैं और इसलिए, इसके लिए संसद के अलावा किसी अन्य प्राधिकरण की आवश्यकता होती है जो यह पता लगाए कि क्या ऐसी सीमाओं का उल्लंघन किया गया है। न्यायिक समीक्षा न केवल संसद और राज्य विधानमंडलों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण को प्रभावी बनाने के लिए अंतिम मध्यस्थ के रूप में कार्य करती है, बल्कि प्रत्येक इकाई द्वारा किसी भी उल्लंघन को दिखाना भी आवश्यक है।

इसलिए, लॉर्ड स्टेन के शब्दों को उधार लेने के लिए, न्यायिक समीक्षा को "शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांतों, कानून के शासन, संवैधानिकता के सिद्धांत और न्यायिक समीक्षा की पहुंच" के संयोजन द्वारा उचित ठहराया जाता है।

(iv) यदि किसी भी विधायी कार्रवाई से संघीय ढांचे का उल्लंघन होता है, तो संविधान यह सुनिश्चित करके संघीय ढांचे की रक्षा करने का ध्यान रखता है कि अदालतें संविधान के संरक्षक और दुभाषियों के रूप में कार्य करें और जब भी उल्लंघन का प्रयास किया जाए तो अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उपचार प्रदान करें। इन परिस्थितियों में, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा संविधान को

बनाए रखने और कानून के शासन को बनाए रखने के लिए अनुच्छेद 32 या 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करने के किसी भी निर्देश को संघीय ढांचे का उल्लंघन नहीं कहा जा सकता है।

(v) संविधान द्वारा संसद पर प्रतिबंध और संसद द्वारा कार्यपालिका पर प्रतिबंध

अधिनियमन, संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत न्यायपालिका की शक्ति पर प्रतिबंध नहीं है।

(vi) यदि सूची II की प्रविष्टि 2 के संदर्भ में एक ओर सातवीं अनुसूची और दूसरी ओर सूची I की प्रविष्टि 2ए और प्रविष्टि 80 अन्य, एक अन्य द्वारा एक जांच एजेंसी संबंधित राज्य द्वारा सहमति प्रदान करने के अधीन अनुमेय है, इसका कोई कारण नहीं है कि क्यों, एक असाधारण स्थिति में, अदालत को उसी शक्ति का प्रयोग करने से रोका जाएगा जिसका प्रयोग संघ क़ानून के प्रावधानों के संदर्भ में कर सकता है। हमारी राय में, इस तरह का अभ्यास संवैधानिक न्यायालयों द्वारा शक्ति शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन नहीं करेगी। वास्तव में, यदि ऐसी स्थिति में अदालत राहत देने में विफल रहती है, तो वह अपने संवैधानिक कर्तव्य में विफल होगी।

(vii) जब विशेष पुलिस अधिनियम स्वयं यह प्रावधान करता है कि राज्य की सहमति के अधीन, सी. बी. आई. उस अपराध के संबंध में जांच कर सकती है जो अन्यथा राज्य पुलिस के अधिकार क्षेत्र में था, तो न्यायालय न्यायिक समीक्षा की अपनी संवैधानिक शक्ति का भी प्रयोग कर सकता है और सी. बी. आई. को राज्य के अधिकार क्षेत्र में जांच करने का निर्देश दे सकता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति को विशेष पुलिस अधिनियम की धारा 6 द्वारा कम या कम नहीं किया जा सकता है। न्यायालयों की शक्तियों पर प्रतिबंध के रूप में

कार्य करने वाला कोई भी वैधानिक प्रावधान होने के बावजूद, संघ की शक्तियों पर विशेष पुलिस अधिनियम की धारा 6 द्वारा लगाए गए प्रतिबंध को संवैधानिक न्यायालयों की शक्तियों पर प्रतिबंध के रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है। इसलिए, हमारी राय में, उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग, शक्ति के पृथक्करण के सिद्धांत या संघीय ढांचे का उल्लंघन नहीं होगा।

45. अंतिम विश्लेषण में, निर्दिष्ट प्रश्न का हमारा उत्तर यह है कि उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, सी. बी. आई. को उस राज्य की सहमति के बिना किसी राज्य के क्षेत्र के भीतर किए गए कथित संज्ञेय अपराध की जांच करने का निर्देश न तो संविधान के संघीय ढांचे पर प्रभाव डालेगा और न ही शक्ति के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करेगा और न ही कानून में वैध होगा। नागरिकों की नागरिक स्वतंत्रता के संरक्षक होने के नाते, इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों के पास न केवल शक्ति और अधिकारिता है, बल्कि सामान्य रूप से भाग III द्वारा और विशेष रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों की उत्साहपूर्वक एवं सतर्कतापूर्वक रक्षा करने का दायित्व भी है।

46. मामला छोड़ने से पहले, हम इस बात पर जोर देना आवश्यक समझते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 द्वारा प्रदत्त व्यापक शक्तियों के बावजूद, कोई भी आदेश पारित करते समय, न्यायालयों को इन संवैधानिक शक्तियों के प्रयोग पर कुछ स्व-लागू सीमाओं को ध्यान में रखना चाहिए। उक्त अनुच्छेदों के तहत शक्ति की प्रचुरता के लिए इसके प्रयोग में बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता है। जहां तक किसी मामले में जांच करने के लिए सी. बी. आई. को निर्देश जारी करने का सवाल है, हालांकि यह तय करने के लिए कोई कठोर दिशानिर्देश निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए या नहीं, लेकिन बार-बार यह दोहराया गया है कि ऐसा आदेश नियमित

रूप से या केवल इसलिए पारित नहीं किया जाना है क्योंकि किसी पक्ष ने स्थानीय पुलिस के खिलाफ कुछ आरोप लगाए हैं। इस असाधारण शक्ति का प्रयोग संयम से, सावधानी से और असाधारण स्थितियों में किया जाना चाहिए जहां जांच में विश्वसनीयता प्रदान करना और विश्वास पैदा करना आवश्यक हो जाता है या जहां घटना के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव हो सकते हैं या जहां पूर्ण न्याय करने और मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए ऐसा आदेश आवश्यक हो सकता है। अन्यथा सी. बी. आई. बड़ी संख्या में मामलों से भर जाएगी और सीमित संसाधनों के साथ, गंभीर मामलों की ठीक से जांच करना भी मुश्किल हो सकता है और इस प्रक्रिया में असंतोषजनक जांच के साथ अपनी विश्वसनीयता और उद्देश्य खो सकता है।

47. सचिव, लघु सिंचाई और ग्रामीण अभियांत्रिकी सेवा, यू. पी. और अन्य। बनाम। सहंगू राम आर्य और एक अन्य में.31, इस अदालत ने कहा था कि सी. बी. आई. द्वारा जांच का निर्देश देने वाला आदेश केवल तभी पारित किया जाना चाहिए जब उच्च न्यायालय, अभिलेख पर सामग्री पर विचार करने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसी सामग्री सी. बी. आई. या किसी अन्य समान एजेंसी द्वारा जांच की मांग करने वाले प्रथम दृष्टया मामले का खुलासा करती है। हम सम्मानपूर्वक इन टिप्पणियों से सहमत हैं।

48. सभी मामलों को अब इस राय के संदर्भ में निपटारे के लिए संबंधित पीठों के समक्ष रखा जाएगा।

आर.पी प्रश्न का उत्तर दिया गया।